इस्लाम में

औरत का स्थान

और

मुस्लिम पर्सनल लॉ

पर एतिराज़ात की हक़ीक़त

लेखक

प्रोफ़ेसर उमर हयात ख़ाँ ग़ौरी

अनुवादक

रैहान अहमद

संपादक

कौसर लईक़

विषय-सूची

अध्याय – 2

इस्लाम की सामाजिक-व्यवस्था 35

अध्याय – 3

मुस्लिम पर्सनल लॉ और क़ुरआन के प्रमाण 71

अध्याय - 4

अध्याय - 5

अध्याय - 6

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह अत्यन्त दयावान, कृपाशील के नाम से)

दो बातें

'मुस्लिम पर्सनल लॉ' एक ऐसा क़ानून है जो इस्लामी जीवन-व्यवस्था पर आधारित है। एक लम्बे समय से भारत में इसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा बनाया जाता रहा है और माँग की जाती रही है कि इसे बदलकर देश में 'समान सिवल कोड' लागू कर दिया जाए। मुसलमान इस क़ानून को बदलने के लिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि यह इस्लामी जीवन-व्यवस्था पर आधारित है। देश की बहुसंख्यक जाति के नेता सरकारी ज़िम्मेदारों की मदद से इसमें परिवर्तन की माँग करते रहते हैं। कभी-कभी कोई नेशनलिस्ट मुसलमान भी उसी सुर-में-सुर मिला बैठता है, और इस तरह यह मुद्दा दिन-प्रतिदिन महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है।

इस पुस्तक में इसी समस्या पर वार्ता की गई है। सबसे पहले मानव-इतिहास से विभिन्न सभ्यताओं में औरत की हैसियत पर बहस की गई है। फिर इस्लामी जीवन-व्यवस्था से यह समझाने की कोशिश की गई है कि इस्लाम द्वारा निर्मित समाज में पुरुष और महिला के पारस्परिक सम्बन्ध और अधिकार निर्धारित करके औरत को किस तरह शोषण से बचाया गया है। इसके बाद इस बात की खोज की गई है कि वह कौन-सा गिरोह है जो इस क़ानून को बदलवाने के लिए बुनियादी तौर पर काम कर रहा है और उसके उत्प्रेरक तत्त्व क्या हैं ? इस बात को निर्धारित करने के लिए यथासम्भव प्रामाणिक आधार जुटाए गए हैं। पुस्तक के अन्तिम भाग में उन आपत्तियों पर बहस की गई है जो समय-समय पर मुस्लिम पर्सनल लॉ पर की जाती रही हैं। इस बहस में इस बात की भी कोशिश की गई है कि पाठकों को मालूम हो जाए कि आपत्ति करनेवालों का धार्मिक दृष्टिकोण इन बातों में क्या रहा है और यूरोप में किस सामाजिक पृष्ठभूमि में वहाँ के धार्मिक समाज पर

ये एतिराज़ात उठाए गए थे, जिन्हें विद्या-विशारदों (Orientalists) ने कुछ बढ़ा-चढ़ाकर इस्लाम पर थोप दिए हैं? फिर बौद्धिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक दलीलों से इन पृष्ठों में इस्लाम के दृष्टिकोण की व्याख्या की गई है।

इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में मुस्लिम पर्सनल लॉ से सम्बन्धित विषयों के बारे में क़ुरआन मजीद से प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं तथा चौथे अध्याय में भारत में लागू विभिन्न क़ानूनों का सार और उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस पुस्तक का ध्येय यह है कि वे लोग जो इस क़ानून (मुस्लिम पर्सनल लॉ) को बदलवाना चाहते हैं, वे अच्छी तरह जान लें कि उनका यह कार्य उचित है या अनुचित? क्या वे वास्तव में नारी का भला चाहते हैं? साथ ही मुसलमानों को भी मालूम हो जाए कि इस्लामी जीवन-व्यवस्था में इस क़ानून को कैसा मौलिक महत्त्व प्राप्त है ताकि वे इसकी रक्षा के लिए नए संकल्प के साथ अपनी कमर बाँधकर तैयार हो जाएँ।

यह फ़ैसला तो पाठकों को ही करना है कि मैं अपनी इस कोशिश में कहाँ तक सफल हो सका हूँ। फिर भी उनसे निवेदन है कि वे अपनी बहुमूल्य रायों एवं सुझावों से हमें अवगत कराएँ। ख़ुदा इस प्रयास को क़बूल फ़रमाए।

भोपाल — उमर हयात ख़ाँ ग़ौरी

20 जून, 1997 ई०

प्रकाशक की ओर से

स्वतंत्र भारत के आरंभिक काल से ही मुस्लिम पर्सनल लॉ को एक विवादित विषय के रूप में कुछ स्वार्थी तत्त्वों की ओर से उभारा जाता रहा है और जनसाधारण को इसके सम्बन्ध में भ्रमित करने का कुप्रयास होता आ रहा है। खेद का विषय तो यह है कि मुस्लिम वर्ग की ओर से भी अब तक ऐसा कोई प्रभावकारी प्रयास नहीं किया गया कि जनसाधारण यह समझ सकें कि मुस्लिम पर्सनल लॉ क्या है और इसका क्या महत्त्व है।

यह पुस्तक इसी दिशा में एक प्रयास है, जिसमें विद्वान लेखक ने बड़ी विद्वता के साथ यह बताने की कोशिश की है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ क्या है और उसका क्या महत्त्व है ? इस पुस्तक में यह भी पता लगाने का प्रयास किया गया है कि इस लॉ का विरोध करनेवाले तत्त्वों के पीछे कौन-सी मानसिकता कार्यरत है और उनका निहित स्वार्थ क्या है?

लेखक ने मूलतः इस पुस्तक को उर्दू भाषा में लिखा था। उर्दू भाषा में यह पुस्तक बहुत ज़्यादा लोकप्रिय हुई। हिन्दी पाठकों की माँग पर इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल और सहज रखने का प्रयास किया गया है। इसके अनुवादक जनाब रैहान अहमद साहब हैं, जो हिन्दी और उर्दू भाषा के विद्वानों में से थे।

इस हिन्दी पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि इसे उर्दू पुस्तक की तुलना में अधिक प्रामाणिक बनाने एवं कुछ अनावश्यक अंशों को निकालकर और कुछ जोड़कर और अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। इस कार्य को संपादक की हैसियत से जनाब कौसर लईक़ साहब ने अंजाम दिया और उन्होंने अपने दायित्व को बख़ूबी निभाया है।

यह पुस्तक अपने प्रसंग एवं विषय की दृष्टि से अनुपम है। हमारी जानकारी की सीमा तक संभवतः यह अपने विषय पर हिन्दी में अकेली अनुपम पुस्तक है।

ख़ुदा से प्रार्थना है कि वह हमारे इस प्रयास को स्वीकार करे और इसे अपने उद्देश्य की दृष्टि से सफल बनाए।

— प्रकाशक

मानव-समाज के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ

हम दुनिया में पैदा होते ही स्वयं को समाज का एक सदस्य पाते हैं और इसी समाज के उपकारों के हम जन्म से मौत तक ऋणी रहते हैं। समाज वह संस्था और कारख़ाना है जो हमें जीवन-शक्ति के साथ स्वभाव व आचरण और ज्ञान-विज्ञान की दौलत प्रदान करता है और हमें सभ्य बनाकर गौरवान्वित करता है। यह समाज ही है जहाँ हम सब कुछ सीखते हैं, विद्या और जीवन की चेतना प्राप्त करते हैं और हमदर्दी और दूसरों की सेवा करने का पाठ पढ़ते हैं। साथ ही दूसरों के लिए त्याग करने और उसपर ख़ुश होने का गुण प्राप्त करते हैं।

इस समाज में हमारे माता-पिता भी होते हैं, भाई-बहन और पति-पत्नी भी, इनके अलावा बाक़ी दूसरे रिश्तेदार भी। यह सारी इनसानी आबादी है जिसका एक सदस्य होने की हैसियत से हम भी इसी समाज में साँस लेते, परवान चढ़ते और जीवन गुज़ारते हुए इस दुनिया से कूच कर जाते हैं।

समाज के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ

हमारे समाज में पाए जानेवाले समस्त इनसानों को मुख्यत: दो वर्गों में बाँटा जा सकता है — एक पुरुष वर्ग, दूसरा स्त्री वर्ग। समाज की शुरुआत ही एक पुरुष और एक स्त्री के संयोग से होती है। अल्लाह तआला ने भी सबसे पहले हज़रत आदम (अलै०) और हज़रत हव्वा (अलै०) को पैदा किया। दुनिया की पूरी इनसानी आबादी आदम और हव्वा के इसी पहले जोड़े से पैदा हुई। यही दो व्यक्तित्त्व मानव-समाज के महत्त्वपूर्ण और आधारभूत स्तम्भ हैं जिनसे मानव-वंश का आरम्भ हुआ है और तब से इसका फैलाव हो रहा है और क़ियामत तक इसका सिलसिला जारी रहेगा। समाज में जिस तरह पुरुष कहीं एक रूप में हमारे

सामने आता है तो कहीं दूसरे रूप में। इसी प्रकार स्त्री भी कहीं माँ के रूप में हमारे सामने आती है तो कहीं बहन के रूप में। कहीं वह पत्नी का रूप लेती है तो कहीं बेटी का।

समाज का अध्ययन

मानव-समाज का अध्ययन करने के लिए ज़रूरी है कि उसके इन महत्त्वपूर्ण स्तम्भों का अध्ययन किया जाए, क्योंकि इन्हीं के आपसी सम्बम्ध के सही या ग़लत और अच्छा या बुरा होने पर ही सारे समाज का सही या ग़लत और अच्छा या बुरा होना निर्भर करता है।

समाज की महत्त्वपूर्ण समस्या

मनुष्य ने जब से समाज की परिधि में क़दम रखा है, उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण और बुनियादी समस्या यही रही है कि समाज में स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का आधार और प्रकार क्या हो? ताकि ये दोनों अपने अधिकार और कर्तव्यों का पालन करते हुए समाज की गाड़ी को आगे बढ़ा सकें। मगर इस समस्या को सुलझाने की जितनी कोशिश की गई उतनी ही यह उलझती चली गई। मनुष्य इस निर्णय में कभी एक सीमा को लाँघ गया तो कभी उसके विपरीत दूसरी सीमा को। कभी पुरुष ने औरत को शैतान की बेटी और पापजननी कहकर अपमानित किया और इस मानवता की अर्द्धांगिनी को अपने से काट फेंका तो कभी इसे अपनी सेविका और दासी के रूप में स्वयं से चिपकाए रखा। कभी इसको सिर पर चढ़ाया तो इतना कि वह समाज की तबाही का कारण बन गई और कहीं इसको इतना मजबूर कर दिया कि इस दुखिया का समाज में साँस लेना भी दूभर हो गया और इसको अपने जीवन से रुचि ही न रही।

समस्या का महत्त्व

इस समस्या को सुलझाने की जितनी कोशिश की गई उतनी ही उलझती चली गई, यहाँ तक कि इस समस्या का अनुचित हल संसार की अनेक जातियों

की तबाही का कारण बना। इसकी वजह यह है कि यह समस्या कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसके लाभ और वास्तविकता को किसी प्रयोगशाला में सिद्ध किया जा सके, बल्कि यह मानव-समाज की उन महत्त्वपूर्ण और मौलिक समस्याओं से सम्बन्धित है जिनका प्रयोगशाला में विश्लेषण नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिए व्यापक दृष्टि, असीमित ज्ञान और मानव-जीवन के बुनियादी सिद्धान्तों की सही व पूर्ण जानकारी अपेक्षित है। इनके बिना इस गुत्थी को सुलझाना असम्भव है। क्योंकि इनसान स्वयं अपने में एक लघु संसार है, इसलिए उसके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी होना असम्भव है। इस संसार के सम्बन्ध में, जिसमें इनसान को जीवन गुज़ारना है, पूरी जानकारी प्राप्त करना और भी अधिक असम्भव है। किन्तु विवशता यह है कि इनसान का ज्ञान न तो असीमित है और न सर्वव्यापी। उसका ज्ञान तो इतना अपूर्ण और सीमित है कि हज़ारों साल के अनुभव और विज्ञान व टेकनॉलॉजी के मैदान में इतनी उन्नति करने के बाद भी वह यह दावा करने की स्थिति में नहीं है कि उसने सृष्टि के सबसे छोटे कण (एटम) के सम्बन्ध में ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली है।

इतिहास की गवाही

मानव-समाज के इतिहास का अध्ययन इस बात की गवाही देता है कि मनुष्य ने इस अधूरे ज्ञान और बहुत कम अनुभव के घमण्ड में इस समस्या को जब भी सुलझाने की कोशिश की वह और ज़्यादा उलझती चली गई। वह कभी अधिकता का शिकार हुआ तो कभी कमी का, मगर न्याय और सन्तुलन के रास्ते तक पहुँचने में कामयाबी हासिल न कर सका।

(1) यूनानी समाज में औरत

प्राचीन समाज में यूनान का नाम सबसे ऊपर आता है, जो अपने उन्नति-काल में सभ्यता का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। वहाँ औरत का स्थान नैतिक हैसियत से, क़ानूनी अधिकारों और सामाजिक बरताव तक में, गिरा हुआ था, उसको तमाम इनसानी दुखों का कारण माना जाता था। लेकिन सभ्यता के विकास के

साथ उसे ऊँचा दर्जा हासिल हुआ और फिर वह यूनानी समाज में घर की रानी समझी जाने लगी। उसका कार्यक्षेत्र घर तक सीमित समझा जाने लगा, और उसे इस क्षेत्र में पूरी तरह अधिकार प्राप्त था। उसकी पाकदामनी को एक क़ीमती चीज़ माना गया और उसे आदर की नज़र से देखा जाने लगा। शरीफ़ यूनानियों में पर्दे का भी रिवाज था। उनके घरों में औरतों के कमरे मर्दों के कमरों से अलग होते थे। उनकी औरतें मर्दों के साथ मजलिसों में सम्मिलित नहीं होती थीं और न आम जगहों पर नज़र आती थीं। निकाह (विवाह) के ज़रिए किसी एक मर्द के साथ औरत का सम्बन्ध आदर का दर्जा रखता था। विवाह उसकी इज़्ज़त बढ़ानेवाला काम माना जाता था। बेवा (विधवा) बनकर रहना उसके लिए अपमान की बात थी। यह उस समय का हाल था जब यूनानी बहुत ताक़तवर थे और विकास की ओर बढ़ रहे थे। मगर सभ्यता के इस विकास के साथ-साथ कुछ बुराइयाँ ऐसी भी पनप रही थीं जिनके कारण कुछ ही समय में पूरा नक़्शा बदल गया और हाल यह हो गया कि सभ्यता के विकास ने जब आर्ट और सौन्दर्य (Aesthetics) की पूजा के सभ्य नामों से नग्नता और कामवासना की ग़ुलामी को सराहना शुरू किया तो कामुकता की भावना की अधिकता बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँच गई कि स्वाभाविक रास्ते से हटकर अस्वाभाविक रीतियों से इच्छापूर्ति की खोज करनी पड़ी।

लेकिन प्रकृति का क़ानून इतना अटल और बेलोच है कि फिर उसने यूनानी समाज को न केवल यह कि विकास के मार्ग से हटा दिया, बल्कि उसकी पूरी सभ्यता को ही मिटाकर रख दिया।

(2) रूमी समाज में औरत

यूनानी क़ौम के बाद जो क़ौम हमारे सामने आती है, वह है रूमी क़ौम। असभ्य अवस्था में रूमी समाज में 'मर्द' कुटुम्ब का सरदार होता था जिसको अपनी बीवी और बच्चों पर मालिकाना अधिकार प्राप्त थे। यहाँ तक कि वह अपनी पत्नी को क़त्ल भी कर सकता था। मगर समाज की उन्नति के साथ उनके

रहन-सहन में भी परिवर्तन आया। औरत के सम्बन्ध में पाकदामनी और शुद्धता एक क़ीमती चीज़ और शराफ़त का मापदण्ड समझी जाने लगी। एक औरत उस समय तक आदर के क़ाबिल समझी जाने लगी, जब तक कि वह एक कुटुम्ब की माँ रहे। लेकिन सामाजिक विकास के साथ उनमें भी कुछ अनैतिकता के घातक रोग पैदा हो गए और हाल यह हो गया कि नैतिकता और समाज के बन्धन ढीले पड़ गए। रूम में कामवासना, नग्नता और व्यभिचार का तूफ़ान फूट पड़ा। थियेटरों में अश्लीलता और नग्नता का प्रदर्शन होने लगा। बुरी भावनाओं को उत्तेजित करनेवाली नंगी और अश्लील तस्वीरें हर घर का आवश्यक अंग बन गईं। समाज में यहाँ तक बिगाड़ पैदा हुआ कि उसको रोकने के लिए दण्ड-विधान को सामने आना पड़ा। इसके बाद भी इस तूफ़ान पर क़ाबू नहीं पाया जा सका और इसके नतीजे में रूमी सभ्यता अपनी समस्त बुराइयों के साथ नष्ट हो गई।

(3) प्राचीन आर्य समाज में औरत

भारत की प्राचीन आर्य सभ्यता के अध्ययन से मालूम होता है कि उस समाज में भी औरत की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उसका कोई अधिकार माना ही नहीं गया था। उसे जायदाद रखने का हक़ भी नहीं दिया गया था। उसके लिए आवश्यक था कि वह अपनी हस्ती को पति के व्यक्तित्त्व में मिलाकर उसे नकार दे और पति को देवता मानकर जीवन भर उसकी पूजा करती रहे। विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण विषय में भी उसकी राय का कोई दख़ल नहीं था। विवाह उसके लिए आजीवन बन्धन था जिससे सिर्फ़ मौत ही छुटकारा दिला सकती थी।[1] इसी प्रकार पति की मृत्यु के बाद स्त्री को पति की चिता में जलकर प्राण देने की भी परम्परा थी।[2]

आर्य समाज में स्त्री के लिए लड़का पैदा करना अनिवार्य था। सन्तानहीन स्त्री को समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। निःसन्तान पुरुष की तो

1. शतपथ ब्राह्मण 4/1/5/9

2. महाभारत 1/95/65, 4/23/8, 16/7/18-24, विष्णु पुराण 5/38/2, रामायण 7/17/15, दक्ष स्मृति 4/17, पराशर स्मृति 4/32 आदि। —सम्पादक

मुक्ति ही नहीं मानी जाती थी।[1] सम्भवत: इसी कारण यदि पति मर जाता या सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं होता तो स्त्री को अन्य पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध बनाकर सन्तान उत्पन्न करने की अनुमति थी। सन्तान उत्पन्न करने की इस विधि को नियोग कहा जाता था। इस हेतु पुरुष में देवर की नियुक्ति उत्तम मानी जाती थी। देवर के न होने पर गुरु व परिवार के बड़े लोग जिस पुरुष को नियुक्त कर देते, स्त्री उस पुरुष से रति क्रिया करके पुत्र उत्पन्न करती।[2] पति को अपनी स्त्री पर मालिकाना अधिकार प्राप्त थे — इतने अधिकार कि वह जिस व्यक्ति को चाहे उसे दान में दे सकता था। औरत की बेबसी का यह हाल था कि उसे जुए में दाव पर लगाया जा सकता था और वह जीतनेवाले के हवाले की जा सकती थी और जीतनेवाला उसे अपनी सम्पत्ति की तरह जैसे चाहता इस्तेमाल कर सकता था।

उस युग में हिन्दू समाज में कई तरह की शादियाँ हुआ करती थीं जिनमें अधिकतर औरत के साथ अत्याचार ही हुआ करता था।[3]

एक ही समय में एक औरत के कई पति हो सकते थे और उसे उन सबको स्वीकार करना पड़ता था। पुरुष अनगिनत पत्नियाँ रख सकता था, पति को अधिकार था कि वह जितनी चाहे रखैलें रखे, मगर औरत ख़ामोश तमाशाई ही बने रहने पर मजबूर थी। इस प्रकार हर स्तर पर उसका शोषण होता था। पैदाइश से मौत तक ग़ुलामी उसका भाग्य बन चुकी थी। स्वतन्त्रता और समानता उसके लिए निरर्थक शब्द थे।

समाज में हर सतह पर उसका स्त्रीत्व लुट रहा था। वह मर्द की सम्भोग-इच्छा को पूरा करने का साधन मात्र बनकर रह गई थी। स्त्रीत्व की इस लूट के लिए उसे 'शक्ति' की शराब पिलाई जाती थी और उसके स्त्रीत्व का शोषण करने

---

1. वशिष्ट स्मृति 17/2, मनु० 9/137
2. मनुस्मृति 9/59-61, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/68-69, नारद स्मृति 4/32 आदि।
—सम्पादक

3. Cultural History of Ancient India, by P.S. Joshi.

के लिए नए-नए दर्शनशास्त्र और नई-नई तरकीबों का आविष्कार किया जा रहा था। समाज में लिंग पूजा की जा रही थी और देवी-देवताओं की सम्भोग-कथाएँ समाज को सम्भोग-प्रिय बना रही थीं। औरत का क्रय-विक्रय भी हो रहा था और उसे वेश्या के नाम से किराए पर भी चलाया जा रहा था। उसके साथ सम्भोग का आनन्द प्राप्त करने के लिए शादी-विवाह की अनिवार्य शर्त भी नहीं थी। दुश्मनों के लिए उसे विषकन्या के रूप में भी पाला जाता था और देवदासियों के नाम पर उसका धार्मिक स्तर पर लैंगिक शोषण हो रहा था। यह सब होते हुए भी वह भरोसा करने योग्य नहीं थी। न उससे कोई गोपनीय बात कही जा सकती थी, न उससे किसी प्रकार का विचार-विमर्श किया जाता था और न ही उसका कोई अधिकार माना जाता था। हर स्तर पर डर, दास्ता, हीनता और दुर्भाग्य ही उसकी क़िसमत बन चुके थे। उसका अपहरण एक मामूली बात थी। संक्षेप में यह कि पूरा समाज उसके लिए जिन्सी दरिन्दों में बदल चुका था जहाँ चारों ओर से लोग उसकी तरफ़ लपक रहे थे और वह बेबसी के साथ ख़ुद को हालात के हवाले करने पर मजबूर थी।

प्राचीन आर्य सभ्यता में औरत की इस हालत का और इससे पैदा होनेवाले सम्भोग-प्रिय वातावरण ही का परिणाम है कि हमारा मुल्क अपने इतिहास के बहुत लम्बे समय तक विदेशी जातियों का निशाना बना रहा और दुनिया की छोटी-छोटी शक्तियाँ इसपर क़ब्ज़ा और शासन करती रहीं और धीरे-धीरे यह सभ्यता अपनी विशेषताएँ समाप्त करती चली गई।

(4) क़ानून विद् हमूराबी[1] की दृष्टि में

औरत बे-ज़बान जानवरों के समान जायदाद समझी जाती थी। अतः यदि कोई किसी लड़की को क़त्ल कर देता था तो उसके बदले में अपनी लड़की दे सकता था, जिसे क़त्ल की गई लड़की के घरवाले चाहे क़त्ल कर देते या छोड़ देते।

1. हमूराबी ईराक़ का प्राचीन बादशाह हुआ है। जिसने सर्वप्रथम दुनिया को क़ानून दिया।

(5) इस्लाम से पूर्व अरब में औरत की स्थिति

प्राचीन अरब सभ्यता में लड़कियाँ ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ दी जाती थीं। उनके पालन-पोषण को एक बोझ माना जाता था। उन्हें विरासत में बाँटा जाता था। वे ख़रीदी, बेची और गिरवी रखी जा सकती थीं। पिता की मृत्यु के बाद पुत्र अपनी माँ से शादी कर सकता था। समाज में वेश्यावृत्ति को मान्यता प्राप्त थी और वह अपने घर को, ऊँचे झंडे लगाकर, अलग ज़ाहिर कर सकती थी।

इस्लाम से पूर्व अरब में लड़कियाँ नफ़रत की नज़र से देखी जाती थीं। किसी को अपना दामाद बनाना लोग अपने लिए अपमान की बात मानते थे और इस कलंक से बचने के लिए लड़कियों का न होना ही अच्छा समझा जाता था। लड़कियों को ज़िन्दा दफ़न करने का आम रिवाज था जिसके विरुद्ध इस्लाम ने अपनी आवाज़ उठाई।[1]

अरब अज्ञान-काल (इस्लाम से पूर्व) में शादियों के बड़े घिनावने तरीक़े प्रचलित थे। शादी की असल शक्ल तो यही थी कि एक व्यक्ति दूसरे की लड़की या किसी रिश्तेदार का रिश्ता माँगे और मेहर देकर निकाह कर ले। दूसरी शक्ल यह थी कि एक मर्द की पत्नी मासिक धर्म से निवृत होकर अपने पति की अनुमति से किसी अन्य मर्द के पास चली जाती थी और पति उससे अलग रहता था, यहाँ तक कि वह औरत उस अन्य मर्द के द्वारा गर्भ धारण कर लेती थी। तीसरी शक्ल यह थी कि नौ या उससे कम मर्द एक ही वक़्त में किसी औरत से सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। बाद में अगर गर्भ के परिणामस्वरूप बच्चा पैदा होता तो वह औरत उन सब मर्दों को बुला लेती थी और उन्हें लाज़िमी तौर पर उसके घर में जमा होना पड़ता था। फिर वह औरत उनमें से किसी एक व्यक्ति की ओर इशारा करके कह देती थी कि यह उसका बच्चा है और उस मर्द को उस औरत की बात माननी पड़ती थी। उस काल में शादी की चौथी शक्ल यह थी कि असंख्य मर्द किसी एक

---

1. विस्तृत जानकारी के लिए देखें "मुस्लिम पर्सनल लॉ और इस्लाम का आइली निज़ाम।" (उर्दू)

ही औरत से यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। उस औरत के गर्भ के परिणामस्वरूप अगर बच्चा पैदा हो जाता था तो उसके घर आनेवाले सभी मर्दों को जमा किया जाता था और एक ज्योतिषी को भी बुला लिया जाता था और वह बच्चे के चेहरे-मोहरे को देखकर वहाँ जमा लोगों से तुलना करता और फ़ैसला सुना देता कि वह किस मर्द का बच्चा है। जिस मर्द को उस बच्चे का बाप घोषित किया जाता था उसे इस बात को मानना पड़ता था।

इन बातों से मालूम होता है कि अरब अज्ञान-काल में औरत के साथ कितना अत्याचार हो रहा था और उसे समाज में कितना गिरा हुआ स्थान दिया गया था।

(6) प्राचीन यहूदी समाज में औरत

यहूदी भी स्त्रियों के प्रति उदार हृदय न थे, वरन् अत्यंत क्रूर और अत्याचारपूर्ण व्यवहार करते थे। उनके समाज में पुत्रियों का दर्जा पुत्रों से कम बल्कि नौकर-चाकर से भी कम था। भाइयों के होते हुए उसे विरासत मिलने का अधिकार नहीं था, बाप उसे बेच सकता था। 'आदम की भूल' और 'गेहूँ का नशा' की सम्पूर्ण सज़ा यहूदियों की तारीख़ में औरत को ही भुगतनी पड़ी। वे औरत को पाप और भूल का स्रोत मानते थे। उनके विचार में हव्वा ही शैतान का साधन और जन्म की पापिनी थी जिनके कारण आदम को स्वर्ग का स्थाई वास छोड़कर इस धरती पर आना पड़ा। यहूदियों के अनुसार— हर औरत शैतान की सवारी और वह बिच्छू है जो अनिवार्यतः इनसान को डंक मारता है।— औरत के सम्बन्ध में उनके ये विचार उनके धार्मिक विश्वास का अंग बन चुके थे। वे अपनी सभाओं में प्रश्न करते थे कि क्या औरत को भी मर्दों की तरह ख़ुदा की इबादत का अधिकार है? क्या वह भी जन्नत और आसमानी बादशाहत में दाख़िल हो सकती है? क्या उसमें मानवीय प्राण होता है? बाद में ये प्रश्न पक्के धार्मिक विश्वासों में बदल गए, जिनके नतीजे में उनका यह विचार बन गया कि औरत इनसान नहीं, बल्कि मर्द की सेवा के लिए इनसान के रूप में जानवर है। उसे हँसने-बोलने से भी रोक

देना चाहिए, इसलिए कि वह शैतान की एजेन्ट है।

इसी विचार के अन्तर्गत फ्रांस में सन् 586 ई० में एक धार्मिक सभा आयोजित की गई जिसमें निर्विरोध निर्णय लिया गया कि वह इनसान तो कही जा सकती है, किन्तु मर्दों की सेवा के लिए पैदा हुई है।

यहूदियों की प्रामाणिक किताब 'जैविश इन्साइक्लोपीडिया' में है –

> ''पहला पाप चूँकि पत्नी के प्रोत्साहन पर हुआ, इसलिए उसे (औरत को) पति के अधीन रखा गया, पति उसका हाकिम और मालिक होता है और वह उसकी दासी।''

(7) प्राचीन ईसाई समाज में औरत

ईसाई समाज में भी औरत को बहुत तुच्छ दर्जा दिया गया था। ईसाई समाज में संन्यास (रहबानियत) ख़ूब प्रचलित था और उसे बहुत उच्चकोटि का काम समझा जाता था। औरतें और मर्द जोगी और संन्यासी बनने पर गर्व करते थे। इनके अलावा साधारण घरेलू औरतों को शैतान की चेली, सदा की पापिन और स्वर्ग से निष्कासन की ज़िम्मेदार समझा जाता था। कलीसा की एक धर्म-सभा ने 582 ई० में निर्णय दिया था कि ''औरतें रूह नहीं रखतीं।'' उनका विश्वास था, ''मर्द औरत से नहीं, बल्कि औरत मर्द से है।'' सिम्ज़ मैन ने अपनी किताब 'प्राचीन क़ानून' में लिखा है कि यूरोप में हर क्षेत्र में औरत की हैसियत मातहत की रही है और विवाह उसे दासी बनाने का साधन समझा जाता था। न उसके मालिकाना हक़ थे, न व्यक्तिगत स्वतन्त्रता थी और न ही विरासत में कोई हिस्सा था। क़दीस बर्नार औरत को ''शैतान की बेटी'' और यूहन्ना दमिश्क़ी उसे ''मक्कार'' कहता था। औरतों को मिलकियत के हक़ से वंचित कर दिया गया था। मिस्टर लेकी अपनी एक पुस्तक 'यूरोपीय नैतिकता के इतिहास' में लिखते हैं कि –

> ''विश्वास यह था कि औरत नरक का द्वार है और समस्त कठिनाइयों का कारण, उसे स्वयं को नीच समझते रहने के लिए यही काफ़ी है कि वह औरत है।''[1]

---

1. Historty of European Morale, Vol. 3, P-142.

आधुनिक सभ्यता में औरत

यह हाल था संसार की प्राचीन सभ्यताओं का जिन्हें आधुनिक सभ्यता का जनक कहा जाता है। इन सभ्यताओं में औरत की इस हालत से अन्दाज़ा होता है कि इनमें से कोई भी सभ्यता स्त्री और पुरुष के सम्बम्धों को न्यायानुकूल व्यवस्थित करने और विधान देने में असफल रही और परिणाम-स्वरूप तबाह हो गई।

अठारहवीं शताब्दी ईसवी में विचारकों और सुधारकों के एक दल को इस अबला जाति पर दया आई और उसने औरत को समाज के अत्याचारपूर्ण रीति-रिवाजों और बन्धनों से आज़ाद कराने के आन्दोलन का आरम्भ किया। उन्होंने औरत को बहुत सहारा दिया और उसे काफ़ी ऊपर उठा लाए, मगर जहाँ उन्होंने उसे ऊँचा उठाकर समाज को कुछ बुराइयों से छुटकारा दिलाया, वहीं वे अति का शिकार हो गए और उन्होंने उन सिद्धान्तों का ग़लत अर्थ लेना आरम्भ कर दिया जिनके आधार पर इस नए समाज का निर्माण हो रहा था।

(1) नवीन समाज के बुनियादी उसूल

इस नवीन समाज के तीन बुनियादी उसूल हैं —

(i) मर्द और औरत की समानता

(ii) औरत का आर्थिक अधिकार

(iii) मर्द और औरतों का आपस में मेल-जोल

(i) मर्द और औरत की समानता

यह सत्य है कि औरत और मर्द एक ही जोड़े से पैदा होते हैं और एक ही वातावरण में पलते और बढ़ते हैं, इसलिए इन दोनों के नैतिक और मानवीय अधिकार समान होने चाहिएँ, मगर इसका अर्थ यह ले लिया गया कि औरत और मर्द चूँकि एक ही जोड़े से पैदा होते हैं और एक ही वातावरण में पलते हैं, इसलिए एक ही तरह के काम भी कर सकते हैं। इस तरह पाश्चात्य सभ्यता के इस सिद्धान्त ने औरत और मर्द में नैतिक और मानवीय समानता के बजाय काम की समानता

पर ज़ोर दिया। सबसे बड़ी ग़लती इस विषय में इन महानुभावों से यह हुई कि वे इस समानता को न्याय और औचित्य की बुनियाद जुटाने में असफल रहे। अगर उन्होंने न्याय व औचित्य के आधार पर समानता का फ़ैसला किया होता तो फिर वे समानता के अर्थ यानी हर व्यक्ति से उसके मिज़ाज, योग्यता और शक्ति के अनुसार काम लेने की सिफ़ारिश करते। समानता यह नहीं है कि एक प्रोफ़ेसर से वह काम लिया जाए जो एक व्यापारी करता है, या एक डॉक्टर से किसी इमारत का नक़्शा बनवा लिया जाए, बल्कि इसके विपरीत समानता यह है कि समाज के हर व्यक्ति से, उसके स्त्री या पुरुष होने को ध्यान में रखकर और उसकी योग्यता के अनुसार काम लिया जाए। तभी यह सम्भव है कि समाज अपना काम अच्छी तरह पूरा कर सके और समाज में दोनों जातियों – स्त्री और पुरुष – में वास्तविक समानता व संतुलन पैदा हो।

(अ) समानता की पहली मिसाल

हमारा यह काल औद्योगिक काल है। कार्य-विभाजन को इसमें बुनियादी महत्त्व हासिल है। जिन कारख़ानों में कार्य-विभाजन की बुनियाद पर काम नहीं किया जाता, उनका माल ख़राब और पैदावार कम होती है और इस कारण क़ीमत भी कम ही मिलती है जिसके परिणाम-स्वरूप पूरे कारख़ाने को असफलता और तबाही का मुँह देखना पड़ता है। कार्य-विभाजन का उसूल इस युग में इतना प्रिय और महत्त्वपूर्ण हो गया है कि साधारण संस्थाओं से लेकर सरकारी प्रबन्ध तक इन्हीं उसूलों पर चलाया जाता है, और सरकार की समस्त योजनाओं का अच्छी तरह अन्त तक पहुँचना इसी पर निर्भर होता है कि उसकी हर इकाई अपना काम सुन्दर ढंग से और पूरी मेहनत से करती रहे। इस उसूल पर यह विभिन्न इकाइयाँ जितनी सफलता से काम करती रहेंगी, शासन-प्रबन्ध भी उतना ही ठोस रहेगा।

शासन-प्रबन्ध के कार्य-विभाजन की इस रूपरेखा में यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी किसी भी इकाई का काम कम महत्त्व वाला या निरर्थक या

अनावश्यक है; क्योंकि ये सारी इकाइयाँ ही मिलकर उस प्रबन्ध को साकार करती हैं जिसको 'शासन' या 'सरकार' कहते हैं। कोई नहीं कह सकता कि गृह मन्त्रालय का काम विदेश मन्त्रालय से कम महत्त्व का या अनावश्यक है या यह कि टैक्स वुसूल करने का काम दूसरे कामों से ज़्यादा ज़रूरी है। किन्तु अगर कोई व्यक्ति इसको असमानता कहकर गृह मन्त्रालय से माँग करे कि उसे भी समानता के दंभ में विदेश मन्त्रालय के मामलों में फ़ैसला करना चाहिए वरना इस तरह उसके साथ ज़ुल्म और असमानता का व्यवहार हो रहा है। स्पष्ट है कि उसकी इस बात पर कौन ध्यान देगा? और अगर ऐसा कुछ दिनों के लिए हो भी जाए तो शासन की सारी मशीनरी तबाह होकर रह जाएगी और देश में क़ानून का उल्लंघन और आन्तरिक व बाह्य टूट-फूट की बीमारी फूट पड़ेगी।

(ब) समानता की दूसरी मिसाल

यह सृष्टि, जिसका इनसान ख़ुद एक अंग है, अपने अन्दर कई महान सत्य रखती है जिनसे लाभ उठाने के लिए ज़रूरी है कि आदमी सहानुभूति, शुभेच्छा और सत्य को स्वीकार करने की भावना के साथ इस सृष्टि के गठन पर विचार करे। इस सोच-विचार के नतीजे में हमें इस सृष्टि में विद्यमान समानता की वह धारणा मिलेगी जिसपर पूरी सृष्टि चल रही है। और स्पष्ट है कि समानता की वही धारणा मानव-जीवन के लिए भी लाभकारी होगी, क्योंकि ख़ुद इंसान भी इसी सृष्टि का एक अंग है। लेकिन इसके लिए हमें अपनी आँखों पर चढ़ा ऐसा रंगीन चश्मा उतारना होगा जिसके कारण हक़ीक़त भी एक दूसरे ही रंग की नज़र आने लगती है।

जब सृष्टि और उसकी व्यवस्था पर ग़ौर किया जाता है और हम उसके विभिन्न भागों के आपसी सम्बन्ध और कार्यकलापों को समझने की कोशिश करते हैं तो हमें वहाँ समानता का एक नया चित्र दिखाई देता है। इस सृष्टि के समस्त अंश जिस उसूल पर काम कर रहे हैं, वह यह है कि ये सब अपने जीवन और अस्तित्व के लिए एक-दूसरे के मोहताज हैं। इनमें से प्रत्येक यदि एक पहलू

से निस्पृह (बेनियाज़) है तो किसी दूसरे पहलू से मोहताज भी है। इनमें से प्रत्येक यदि एक पहलू से इच्छित है तो दूसरे पहलू से इच्छुक है और अपनी आपसी सहायता और सहयोग से ये अपनी-अपनी कमियों को दूर करते हैं। इनमें से प्रत्येक का कार्यक्षेत्र निश्चित है और हर एक, एक विशेष नियम के अनुसार अपने-अपने कार्यक्षेत्र में अपनी गतिविधियों के साथ व्यस्त है और उससे बाल बराबर भी विचलित नहीं होता है। इसी का नतीजा है कि यह विश्व-व्यवस्था अपनी पूरी सुन्दरता के साथ बहुत अच्छी तरह चल रही है।

जगत् की इस व्यवस्था में क्या कोई कह सकता है कि इसके किसी एक अंश का भी काम बेकार या कम महत्त्ववाला है, या यह कि इन अंशों में पूरी समानता नहीं है, या यह कि जगत् के कुछ अंश ज़ुल्म का शिकार हैं। अगर समानता का वह अर्थ, जो कुछ नादानों ने समझ लिया है और जिसके दंभ में वे औरत को उसकी स्वाभाविक सीमाओं से बाहर घसीट लाए हैं, यहाँ भी पैदा हो जाए और ये भी एक-दूसरे के कार्यक्षेत्र में दख़ल देना शुरू कर दें, तो परिणाम क्या होगा? स्पष्ट है कि ज़मीन आसमान से टकरा जाएगी; चाँद सूरज के मार्ग में घूमना शुरू कर देगा; सर्दी गर्मी के साथ आने लगेगी और समुद्र समानता के दावे के साथ पृथ्वी पर चढ़ दौड़ेगा। कुछ दिन या कुछ घंटे नहीं, बल्कि कुछ सेकेण्ड की देर भी न होगी कि यह जगत् छिन्न-भिन्न हो जाएगा। वास्तविकता यह है कि जगत् का अध्ययन हमें समानता की जो कल्पना देता है, वह यह है कि काम का अन्दाज़ और मात्रा का निर्धारण काम करनेवाले की प्राकृतिक, शारीरिक और वास्तविक योग्यताओं की बुनियाद पर हो, न कि काम की समानता पर।

यदि मानव-समाज के गठन में इन सिद्धान्तों (उसूलों) से लाभ उठाया जाए तो यहाँ हमें कार्य-विभाजन के साथ-साथ कार्य-सीमा के विभाजन और जीवन-सुविधा की समानता का सिद्धान्त प्राप्त होता है, न कि काम की समानता का। यूरोपीय समाज ने प्रकृति के व्यापक क़ानून से बग़ावत करके अपने सामाजिक जीवन को तबाही के किनारे पर ला खड़ा किया है।

(ii) औरत का आर्थिक अधिकार

नई सभ्यता का दूसरा मौलिक सिद्धान्त यह है कि औरत आर्थिक दृष्टि से मज़बूत और ख़ुशहाल हो। अर्थात् संसाधनों पर औरत क़ाबिज़ हो और वह अपनी आजीविका के लिए मर्द पर निर्भर न रहे। इस सिद्धान्त के माननेवालों का विचार है कि औरत का सबसे ज़्यादा शोषण इसलिए किया जाता है कि वह अपनी रोज़ी-रोटी के सम्बन्ध में मर्द के अधीन रहती है। इसलिए इस सिद्धान्त को माननेवाले इस बात को ज़रूरी समझते हैं कि मर्दों के साथ-साथ औरतें भी अपनी रोज़ी-रोटी ख़ुद कमाएँ, ताकि वे मर्दों के ज़ुल्म से सुरक्षित रह सकें।

यह दृष्टिकोण देखने में बड़ा ही मनमोहक और न्यायपूर्ण मालूम होता है और औरत को मर्द के हाथों शोषण से बचाने का अचूक नुस्ख़ा महसूस होता है। लेकिन वास्तव में यह दृष्टिकोण और सिद्धान्त पत्नी को पति के हाथों शोषण से नहीं बचा सका, बल्कि उलटे इसने अन्य मर्दों के हाथों उसके शोषण के दूसरे द्वार खोल दिए।

इस दृष्टिकोण और सिद्धान्त को अपनाने के परिणाम स्वरूप औरतें भी मर्दों के साथ दुकानों, कारख़ानों, दफ़्तरों और फ़ैक्ट्रियों में नौकरी और मज़दूरी करने लगीं। इसके साथ-साथ पार्कों, क्लबों और नाचघरों में भी वे मर्दों की नज़रबाज़ियों और कामवासना की पूर्ति के लिए उपलब्ध होने लगीं। औरतों में आकर्षक दिखने की भावना उत्पन्न हुई। बच्चे की माँ बनना ऐब समझा जाने लगा। बच्चे का पालन-पोषण और उसे दूध पिलाना घृणित कार्य बन गया और यूरोप की ख़ानदानी व्यवस्था छिन्न-भिन्न होकर रह गई। इसके बावजूद औरत को जिस शोषण से बचाने के लिए यह पेशक़दमी की गई थी, वह उससे तो सुरक्षित न रह सकी; किन्तु उसका शोषण इतनी निर्दयता से होने लगा कि अब उसमें चीख़ने की ताक़त भी बाक़ी नहीं रही। उसे अपने नारी होने की चेतना से हाथ धोना पड़ा और मर्दों की दौड़ में शामिल होने के कारण वह बेदम होकर रह गई।

ख़ानदानी व्यवस्था के अस्त-व्यस्त और तितर-बितर हो जाने और औरतों

के नौकरी करने के कारण बच्चों का लालन-पालन नौकरानियों और सेविकाओं के हाथों में चला गया। यूरोपीय समाज इसी सिद्धान्त का अनुपालन करने के कारण आज नैतिक दिवालियापन का शिकार हो चुका है, उसके यहाँ यौन-सम्बन्धों के मामले में अनारकी का माहौल पैदा हो गया है और वह विघटन, अत्याचार और व्यभिचार का केन्द्र बन गया है। समाज की इस हालत का प्रभाव औरत पर भी पड़ा और अब वह मर्दों के हाथ में प्लास्टिक के खिलौनों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं रही, जिससे जब तक जी चाहा खेलते रहे और जब दिल भर गया तो ठोकर मार दी।

पाश्चात्य विचारकों ने औरतों की आर्थिक स्वतंत्रता का यह सिद्धान्त इसलिए दिया था कि उनका विचार था कि पति द्वारा अपनी पत्नी पर ज़ुल्म इसलिए किया जाता है कि वह अपने भरण-पोषण के लिए मर्द पर निर्भर होती है। मगर यूरोपीय समाज के अनुभव से मालूम हुआ कि इस दृष्टिकोण ने मर्द को औरत के प्रति और भी बेफ़िक्र और लापरवाह बना दिया। औरत की कमाई का ज़्यादा भाग उसकी सज-धज, सैर-सपाटे और नौकरानियों के वेतन पर ख़र्च होने लगा और पति की लापरवाही ने उसे मानसिक उलझनों में ग्रस्त कर दिया जिसकी वजह से वह दूसरे मर्दों की ओर आकर्षित होने के लिए मजबूर-सी हो गई। इसी का नतीजा है कि पति और पत्नी के सम्बन्ध कमज़ोर होते चले गए और परिणामत: यूरोपीय समाज में तलाक़ आज एक सामाजिक अभिशाप बनकर रह गई है।

इन विचारकों पर आर्थिक समस्याएँ इतनी हावी थीं कि उन्होंने पति-पत्नी के सम्बन्धों की बुनियाद भी उसी को समझ लिया, जबकि पति-पत्नी के सम्बन्धों का कोई जोड़ आर्थिक समस्या से नहीं है बल्कि वह सम्बन्ध आपसी मेल, सहयोग, आवश्यकता और दोनों के प्राकृतिक कर्तव्यों की पूर्ति पर टिका होता है। इस ग़लत बुनियाद ने यूरोपीय समाज को तबाही के उस कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से उसे छुटकारा मिलता नज़र नहीं आता।

(iii) मर्द और औरत का आपस में मेलजोल

वर्तमान समाज का तीसरा बुनियादी सिद्धान्त औरत और मर्द का आपसी

मेलजोल है। इसका मक़सद यह है कि समाज में औरतों और मर्दों का स्वतन्त्र मिलन हो और दोनों में से कोई भी एक-दूसरे से दूर रहने का ख़याल तक न लाए। यह सिद्धान्त पहले दोनों सिद्धान्तों का अनिवार्य फल है। पहले दोनों सिद्धान्तों पर तभी अमल हो सकता है जबकि इस तीसरे सिद्धान्त पर अबाध रूप से अमल हो।

इस दृष्टिकोण का नतीजा यह हुआ कि औरतों में साज-शृंगार का रुझान बढ़ता चला गया। मर्द और औरत फ़ितरी तौर पर एक-दूसरे के लिए आकर्षण रखते ही हैं, इस आज़ादी ने उनको एक-दूसरे के प्रति कामुक बना दिया और दोनों एक-दूसरे से सौन्दर्य-प्रशंसा के इच्छुक रहने लगे। इस बात से पूँजीपतियों ने भरपूर लाभ उठाया और शृंगार की वस्तुओं की भरमार हो गई। लड़के लड़कियों की नक़ल करने लगे और लड़कियाँ लड़कों जैसा दिखने में दिलचस्पी लेने लगीं। इसके साथ नग्नता और अश्लीलता ने सिर उठाना शुरू कर दिया और औरत अपने शरीर को अधिकाधिक नग्न करती चली गई, जिसकी हद नग्न-नृत्यों पर समाप्त हुई। इससे समाज में नग्नता, अश्लीलता और बेरोक-टोक कामुकता उत्पन्न होने में सहायता मिली और समाज नैतिक रूप से खोखला होकर रह गया।

(2) इन सिद्धान्तों पर पैदा होनेवाला समाज

जैसा कि पिछली वार्ता में गुज़र चुका है कि ये सिद्धान्त देखने में बड़े ही सीधे-सादे और लाभप्रद प्रतीत होते हैं, मगर ये अपने स्वभाव में बड़े विषैले और समाज के लिए एक घातक विष से कम नहीं हैं। इनके ज़हरीलेपन और इनके आधार पर गठित समाज की रूप-रेखा का अनुमान उन हिदायतों और सुझावों से सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है जो इन सिद्धान्तों के माननेवालों ने अपने समाज को दिए हैं।

एक फ्रांसीसी लेखक Paul Adam अपनी किताब 'Le Morale de-L'amour' में नौजवानों को इस बात पर धिक्कारता और उनकी भर्त्सना करता है कि वे नैतिक मूल्यों का सहारा लेकर कामेच्छा पूर्ति के लिए एक ही व्यक्ति

पर निर्भर होकर रह जाते हैं। वह उन्हें सुझाव देता है कि आदमी को हर वक़्त नया साथी हासिल करना चाहिए। वह कहता है –

"ये सब बातें इसलिए कही जाती हैं कि शारीरिक आनन्द की इस उचित इच्छा को, जो प्राकृतिक रूप में हर आदमी में होती है और जिसमें कोई बात वास्तव में पाप या बुराई नहीं है, पुराने विचारों के कारण अनुचित समझा जाता है और इसलिए आदमी चाहे-अनचाहे झूठे शब्दों के पर्दे में उनको छिपाने की कोशिश करता है.....मुलाक़ात से उनका मक़सद केवल एक शारीरिक इच्छा की पूर्ति और आनन्द प्राप्त करना है।"[1]

"सभ्य और बुद्धिमान बनो, अपनी इच्छाओं और आनन्दों के सेवकों को अपना पूज्य न बनाओ। नादान है वह जो मुहब्बत का मन्दिर बनाकर उसमें एक ही मूर्ति का पुजारी बन बैठता है। आनन्द की हर घड़ी में एक नए मेहमान का चयन करना चाहिए।"[2]

जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी का लीडर बेबेल (Bebel) बेझिझक लिखता है—

"औरत और मर्द आख़िर हैवान ही तो हैं। क्या हैवानों में विवाह, और वह भी सदा के लिए विवाह, का कोई प्रश्न उत्पन्न हो सकता है?"[3]

डाक्टर ड्रिसडेल (Drysdale) लिखता है—

"हमारी समस्त इच्छाओं की तरह मुहब्बत भी एक बदलती रहनेवाली चीज़ है। इसको एक रीति के साथ बाँध देना प्राकृतिक नियमों में संशोधन कर देना है...... स्वतन्त्र सम्बन्ध एक उच्च नैतिकता की निशानी है, इसलिए कि वह प्राकृतिक नियमों से ज़्यादा निकट है, और इसलिए भी कि वह भावनाओं, विचारों और निःस्वार्थ प्रेम से पैदा होता है। जिस इच्छा और चाहत से यह सम्बन्ध जुड़ता है वह बड़ा नैतिक मूल्य रखता है।"[4]

---

1. व 2. परदा, 1994, पृ० 41-42 से साभार

3. वही, पृ० 47

4. वही, पृ० 47

फ्रांस का प्रसिद्ध नियोमालथूशियन (Neo-Malthusian) लीडर पॉल रोबिन (Paul Robin) लिखता है—

"पिछले 25 वर्षों में हमें इतनी सफलता तो मिल ही चुकी है कि नाजाइज़ बच्चे को क़रीब-क़रीब जाइज़ बच्चे के बराबर कर दिया गया है। अब केवल इतनी कसर बाक़ी है कि केवल पहले ही प्रकार के (नाजाइज़) बच्चे पैदा हुआ करें, ताकि तुलना का प्रश्न ही बाक़ी न रहे।"[1]

इन विचारकों ने समाज को अपने इच्छित साँचे में ढालने के लिए जिन साधनों को प्रयोग किया है, उनका विश्लेषण करना भी उचित होगा। इस सम्बन्ध में जार्ज रायली स्काट अपनी किताब "A History of Prostitution" (वेश्यावृत्ति का इतिहास) में विश्लेषण करते हुए लिखता है –

"सबसे पहले इस श्रृंगार की तीव्र इच्छा को लीजिए जिसकी वजह से हर लड़की में नए फ़ैशन के क़ीमती वस्त्रों और सुन्दरता अभिवृद्धि के विभिन्न प्रसाधनों की तीव्र ललक पैदा हो गई है, यह उस अवैधानिक वेश्यावृत्ति के कारणों में से एक बड़ा कारण है।"[2]

"औरतों की आज़ादी का भी परिस्थिति के उत्पन्न करने में बहुत कुछ दख़ल है। पिछले कुछ वर्षों में लड़कियों पर से माता-पिता की देखरेख और निगरानी इस हद तक कम हो गई है कि तीस-चालीस वर्ष पूर्व लड़कों को भी इतनी आज़ादी हासिल न थी जितनी अब लड़कियों को हासिल है।"[3]

"एक और महत्त्वपूर्ण कारण, जो समाज में व्यापक स्तर पर व्यभिचार फैलने का सबब हुआ है, यह है कि औरतें रोज़ाना बढ़ती हुई तादाद में व्यापारिक कार्यों, नौकरियों और विभिन्न पेशों में दाख़िल हो रही हैं, जहाँ उनको आज़ादाना मुलाक़ातों का भरपूर अवसर मिलता है। इस चीज़ ने औरतों और मर्दों के नैतिक स्तर को बहुत गिरा दिया है। मर्दों के वासनापूर्ण आक्रामक व्यवहार ने औरतों की अपनी सुरक्षा-शक्ति को बहुत कम कर दिया है और दोनों पक्षों के लैंगिक सम्बन्धों को तमाम नैतिक बन्धनों से स्वतन्त्र कर दिया है।"[4]

1. परदा, 1994, पृ० 48 से साभार
2. व 3. वही, पृ० 87-88
4. वही, पृ० 88

इन साधनों के अतिरिक्त गन्दे और उत्तेजनात्मक नग्न चित्रों को भी इस मक़सद के लिए पूरी ताक़त से प्रयोग किया गया। एमेलि पोरेसी (Emile Pouresy) ने व्यभिचार-उन्मूलन संस्था के दूसरे अधिवेशन में जो रिपोर्ट पेश की थी उसमें उसने इस ओर ध्यान आकर्षित किया है, वह कहता है –

> ''ये गन्दे चित्र लोगों के हवास (इंद्रियों) में भारी उत्तेजना और उत्प्रेरणा उत्पन्न करते हैं और अपने बदक़िस्मत ख़रीदारों को ऐसे-ऐसे अपराधों पर उकसाते हैं जिनकी कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लड़के और लड़कियों पर इनका जो भयानक प्रभाव पड़ा है; वह वर्णन-सीमा से बाहर है। बहुत-सी पाठशालाएँ और कॉलेज इन्हीं के कारण नैतिक और शारीरिक रूप में बरबाद हो चुके हैं, विशेष रूप से लड़कियों के लिए तो कोई चीज़ इससे ज़्यादा विनाशकारक नहीं हो सकती।''[1]

(3) यूरोपीय समाज की एक झलक

ये थे वे बुनियादी विचार जिनपर यूरोपीय समाज का गठन किया गया और ये थे वे साधन जिनको इस कार्य के लिए प्रयोग किया गया। इन सिद्धान्तों पर गठित समाज का इस समय क्या हाल है? निम्न रिपोर्ट से इसका अनुमान लगाया जा सकता है –

> ''अमेरिका में प्रतिदिन 1900 बलात्कार की घटनाएँ पेश आती हैं। National Crime Victimization Survey Bureau of Justice Statistics (US of Justice) के अनुसार केवल 1996 में 3,07000 घटनाएँ दर्ज हुई। यह संख्या वास्तविक घटनाओं की मात्र 31 प्रतिशत है। इस प्रकार जो स्थिति सामने आती है वह यह है कि कुल 9,90,322 बलात्कार की घटनाएँ 1996 ई० में घटित हुईं। प्रतिदिन के लिहाज़ से औसत 2713 बलात्कार की घटनाएँ 1996 ई० में अमेरिका में हुईं। ज़रा विचार करें कि अमेरिका में हर 32 सेकेंड में बलात्कार होता है। ऐसा लगता है कि अमेरिकी बलात्कारी बड़े ही निडर हैं। FBI की 1990 ई० की रिपोर्ट आगे बताती है कि बलात्कार की घटनाओं में केवल

---

1. परदा सं. – 1994, पृ० 63।

10 प्रतिशत बलात्कारी ही गिरफ़्तार किए जा सके हैं जो कुल संख्या का 1.6 प्रतिशत है। बलात्कारियों में से 50 प्रतिशित लोगों को मुक़द्दमे से पहले रिहा कर दिया गया। इसका मतलब यह हुआ कि केवल 0.8 प्रतिशत बलात्कारियों के विरुद्ध ही मुक़द्दमा चलाया जा सका। दूसरे शब्दों में अगर एक व्यक्ति 125 बार बलात्कार की घटनाओं में लिप्त हो तो केवल एक बार ही उसे सज़ा दिए जाने की संभावना है। बहुत-से लोग इसे एक अच्छा जुआ समझेंगे। रिपोर्ट से यह भी अंदाज़ा होता है कि सज़ा दिए जानेवालों में से केवल 50 प्रतिशत लोगों को एक साल से कम की सज़ा दी गई है। हालाँकि अमेरिकी क़ानून के अनुसार सात साल की सज़ा होनी चाहिए। उन लोगों के सम्बन्ध में जो पहली बार बलात्कार के दोषी पाए गए हैं, जज नर्म पड़ जाते हैं। ज़रा विचार करें कि एक व्यक्ति 125 बार बलात्कार करता है लेकिन उसके विरुद्ध मुक़द्दमा किए जाने का अवसर केवल एक बार ही आता है और फिर 50 प्रतिशत लोगों को जज की नर्मी का लाभ मिल जाता है और एक साल से भी कम मुद्दत की सज़ा किसी ऐसे बलात्कारी को मिल पाती है जिसपर यह अपराध सिद्ध हो चुका है।"[1]

इस रिपोर्ट पर विचार करते समय इस बात को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह वह देश है जहाँ शैक्षणिक पाठ्यक्रम में यौन-शिक्षा शामिल है। परिवार नियोजन के द्वारा गर्भधारण को रोकने के सारे साधन सरलतापूर्वक उपलब्ध हैं। यौन-सम्बन्ध मामूली बात है और संभोग एक साधारण-सी क्रिया है। इसके उपरान्त गर्भपात की इतनी बड़ी संख्या, अपहरण की यह दशा, कुँवारी माओं की इतनी अधिकता और नौजवानों में यौन-सम्बन्धी रोगों की यह तीव्रता दुनिया के उस देश में पाई जाती है जो सबसे ज़्यादा ख़ुशहाल और उन्नत देश कहा जाता है।

अमेरिका की यह रिपोर्ट हाण्डी के एक चावल के समान है। यूरोप के अन्य देशों का हाल भी इससे कुछ ज़्यादा भिन्न नहीं है, और ये सब वे देश हैं जिन्होंने अपने समाज का गठन उपरोक्त तीन आधारभूत सिद्धान्तों पर किया है। ये सभी समाज अब गिरावट की उस सीमा तक पहुँच चुके हैं कि वहाँ मर्दों और औरतों में

---

1. ग़लतफ़हमियों का निवारण, पृष्ठ 20-21

समलैंगीय संभोग (Homosexuality) लगभग साधारण बात हो गई है, इतनी साधारण कि मरियम की पवित्रता की क़स्में खानेवाले चर्च तक को इस घिनावने कर्म को वैध ठहराते हुए धर्मादेश देना पड़ा है। अमेरिका से सम्बन्धित उपरोक्त रिपोर्ट ही में कहा गया है –

> "युनाइटेड चर्च आफ़ कनाडा ने अपने माननेवालों में समलैंगीय संभोग के आदी मर्दों और औरतों का अलग समुदाय बना दिया है।"
>
> (अख़बार, सेहरोज़ा दावत, नई दिल्ली, 4 अप्रैल, 1984 ई०)

दुर्भाग्य से संसार की एक बड़ी जनसंख्या यूरोप की उपनिवेश रही है। इसके अलावा यूरोपवालों की नीति रही है कि वह दुनिया के जिस देश में भी गए हैं, वहाँ उन्होंने अपने समाज के सिद्धान्तों को लोकप्रिय बनाने का भरपूर प्रयास किया है और उन देशों के समाज की व्यवस्था को उन्हीं रेखाओं पर व्यवस्थित करने की कोशिश की है। यही कारण है कि न केवल यह कि संसार के अधिकांश देशों की सामाजिक व्यवस्था पर इन उसूलों का प्रभाव पड़ रहा है, बल्कि इस दृष्टिकोण के प्रसार के लिए प्रचार-साधन भी वही प्रयोग किए जा रहे हैं और उसी प्रकार किए जा रहे हैं जिनका वर्णन ऊपर गुज़र चुका है। हमारे देश भारत का हाल भी उनसे भिन्न नहीं है, हाँ यह बात अवश्य है कि यहाँ उसके लक्ष्य में कुछ मतभेद हैं।

प्राचीन और आधुनिक सभ्यताओं ने मानव-समाज के इन दोनों महत्त्वपूर्ण स्तम्भों (मर्द और औरत) के सम्बन्धों को निश्चित करने में और उनके गठन में अभी तक जितना भी प्रयत्न किया है, इस विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस सम्बन्ध में उन्हें बुरी तरह असफलता का मुँह देखना पड़ा है। वे कभी ज़्यादती का शिकार होती हैं तो कभी कमी का, मगर उन्हें न्याय और सन्तुलित मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकी। फिर इससे यह भी मालूम हो जाता है कि इस ज़्यादती और कमी में हमेशा औरत ही को हानि उठानी पड़ी है और हर हाल में उसका यौन-सम्बन्धी शोषण होता रहा है। यूरोप के इन हालात से तंग आकर वहाँ की बहुत-सी औरतों ने इसके विरुद्ध बिगुल बजा दिया है, और यूरोप की

प्रदान की हुई इस धार्मिक जीवन-व्यवस्था को त्यागकर इस्लामी जीवन-व्यवस्था को अंगीकार कर लिया है।[1]

इस्लामी समाज में औरत

इस्लाम ने भी मानव-समाज के इन दोनों स्तम्भों (मर्द व औरत) के आपसी सम्बन्धों को व्यवस्थित करने की कोशिश की है। उसने औरतों की पैदाइशी कमज़ोरी की रिआयत आरम्भ से ही रखी, उसे दया व प्रेम की नज़र से देखा, उसे जीवन के भारी बोझ (अर्थात् आजीविका उपार्जित करने) से मुक्त रखा और जीवन के कोमल एवं सूक्ष्म उत्तरदायित्व को उसके सुपुर्द किया। इससे उसका स्त्रीत्व, गौरव-गरिमा, व्यक्तित्व और उसकी हैसियत बाक़ी रही। उसकी भावना घायल नहीं हुई। मर्द और औरत दोनों को हिदायत की गई कि एक-दूसरे से ईर्ष्या न करें, बल्कि अपनी ज़िम्मेदारियाँ पूरी करें। अपने काम में अपनी हस्ती का सुबूत दें। अपनी-अपनी योग्यताओं को काम में लाएँ, अर्थात् अपने लैंगिक गुणों को बाक़ी रखते हुए मिल-जुलकर एक संतुलित जीवन-निर्माण का कार्य करें। नई नस्लों को प्रशिक्षित करें और एक नेक समाज की स्थापना का यत्न करें।

इस्लाम ने औरतों पर सबसे बड़ा एहसान यह किया है कि उसने उनकी हैसियत सदा के लिए सुरक्षित और सम्मानीय बना दी। शील-मणि को उनके गौरवपूर्ण ताज का चमकदार और आबदार मोती बना दिया। शील, सुकुमार्य और लज्जा को उनका आभूषण कहा। उनकी सुन्दरता को अन्जुमन की शमा बनाने के बजाय घर का चिराग़ बनाकर उन्हें व्यभिचार और वासनामय दृष्टियों की आँधियों से सुरक्षित कर दिया। उन्हें आम वस्तु बन जाने के बजाय सम्माननीय जाति होना सिखाया। उसके शील की रक्षा की। इस्लाम ने अपनी नैतिक-व्यवस्था में ही नहीं बल्कि अपनी पूरी जीवन-व्यवस्था में इस बात को सामने रखा, जिससे

---

1. ऐसी क्रान्तिकारी औरतों के विस्तृत हालात जानने के लिए देखिए पुस्तक 'हमें ख़ुदा कैसे मिला?' प्रकाशित मधुर संदेश संगम, नई दिल्ली-25

उसकी पूर्ण रूप से सुरक्षा हो गई। उसने सौन्दर्य-निवास के चारों ओर इतनी मज़बूत दीवार, इतना पक्का कवच खींच दिया जो कामान्धता की पहुँच से परे है। उसने परदे और नज़र ही की पाबन्दियाँ नहीं लगाईं, बल्कि अश्लील व अवैध सोच-विचार के चोर दरवाज़े भी बन्द कर दिए।

इसका नतीजा यह हुआ कि इस्लाम के डेढ़ हज़ार वर्ष के इतिहास में किसी वासनात्मक-विस्फोट और नैतिक टूट-फूट का कोई चिह्न तक नहीं मिलता। ग़ैर-इस्लामी समाज में उत्पन्न इन विकारों के मुक़ाबले में इस्लामी समाज में औरत व मर्द के सम्बन्ध प्राकृतिक हालत में हैं, दोनों अपने स्थान पर सन्तुष्ट हैं, समाज में कोई विघटन नहीं, अधिकारों की कोई माँग नहीं, जीवन शान्त और सुखी है।

यह विश्लेषण ज़हाँ इस्लामी शिक्षा की उत्तमता और सर्वव्यापकता सिद्ध करता है, वहीं इस्लामी समाज में औरत के आदरपूर्ण स्थान को भी स्पष्ट कर देता है।

ऐसी सूरत में ज़रूरी हो जाता है कि इस्लामी सामाजिक-व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन करके देखा जाए कि वे कौन-से आधारभूत सिद्धान्त हैं जिनपर इस्लाम अपने समाज का गठन करता है। आगे के पृष्ठों में इसी बात को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है।

अध्याय -2

इस्लाम की सामाजिक-व्यवस्था

इस्लामी समाज चूँकि इस्लाम के निश्चित किए हुए उसूलों पर पैदा होता व बढ़ता है, इसलिए उसको समझने से पहले इस्लाम का संक्षिप्त अध्ययन करना आवश्यक है। अतः इस्लामी समाज के सम्बन्ध में वार्ता करने से पूर्व अनिवार्य है कि स्वयं इस्लाम को समझ लिया जाए।

इस्लाम

मानव-इतिहास में सातवीं शताब्दी एक निर्णायक मोड़ बन चुकी थी। उस ज़माने तक इनसानी विकास उस मंज़िल तक पहुँच चुका था जिसे इनसानियत का 'व्यस्क-काल' कहा जा सकता है। अब ऐसे लक्षण दिखाई देने लगे थे कि भावी इनसान का उत्थान ज्ञान-विज्ञान और दर्शन की दिशा में होने जा रहा है। इनसान ने अनेक शास्त्रों का आविष्कार कर लिया था। लिपि ईजाद हो चुकी थी। लिखकर ज्ञान को सुरक्षित रखने का युग आ गया था। इनसानी समुदाय ने अपने अतीत को सुरक्षित करना शुरू कर दिया था और इतिहास की कला का आविष्कार हो चुका था।

उस युग में अरब की धरती पर ख़ुदा ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को चुनकर अपना पैग़म्बर बनाया और उनपर मानव-कल्याण के सिद्धान्तों को वह्य (ईश्वरीय प्रकाशना) के द्वारा अवतरित करना आरम्भ कर दिया। वह्य के इसी संग्रह का नाम 'क़ुरआन' है। वह्य जैसे-जैसे अवतरित होती जाती इस पवित्र किताब (क़ुरआन) की आयतें कंठस्थ भी की जाती रहतीं और ख़ुद नबी (सल्ल०) उन्हें लिखने के लिए वह्य-लेखकों को हिदायतें देते रहते और लिखे जाने के बाद लिखी हुई विषय-वस्तु को ख़ुद सुनकर उसके सही होने की पुष्टि भी करते। जब

पूरा क़ुरआन तेईस साल की मुद्दत में अवतरित हो चुका तो पूर्णतः लिखा भी ज
चुका था, और जब पूर्ण हो गया तो ख़ुद ईश्वर ने—जो तेईस वर्ष से इसे अवतरि
कर रहा था—उसपर पूर्ण होने की मुहर इन शब्दों में लगा दी –

> "आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म परिपूर्ण कर दिया और तुमपर अपनी कृपा पूर्ण कर दी, और तुम्हारे लिए धर्म के रूप में इस्लाम को पसन्द किया।"
>
> – क़ुरआन, 5:3

क़ुरआन मजीद पर यह पूर्ण होने की मुहर केवल एक किताब के पूर्ण होने क
ही मुहर न थी, बल्कि ईश्वर ने यह भी बता दिया कि यह किताब की पूर्णता व
साथ-साथ दीन (धर्म) की भी पूर्णता है। और यह दीन भी कोई मामूली चीज़ नह
है, बल्कि ईश्वर की बहुत बड़ी कृपा है जिसकी पूर्णता आज हो रही है और यह
दीन ईश्वर की नेमत है जिसका नाम स्वयं ईश्वर ने 'इस्लाम' रखा है। इस तर
'इस्लाम-धर्म' स्वयं ईश्वर के कहने के मुताबिक़ इनसानों के पास उसकी सब
बड़ी नेमत भी है और ईश्वर का प्रिय धर्म भी जिसे उसके बन्दों को अपना
चाहिए। इस्लाम ईश्वर के सम्पूर्ण आज्ञापालन का नाम है।

क़ुरआन मजीद

चूँकि यह दीन पूर्ण हो चुका है इसलिए इस दीन को लानेवाली किताब भ
हर पहलू से पूरी है; इसलिए लाज़मी है कि यह दीन और यह किताब (क़ुरआन
दुनिया में उस वक़्त तक सुरक्षित रखे जाएँ जब तक कि मानवजाति इस दुनिया
मौजूद रहे, ताकि उसे हर वक़्त रहनुमाई मिलती रहे। अतः इसी कारण ईश्वर
इस किताब और दीन की सुरक्षा का प्रबन्ध किया, और उसने इसकी सुरक्ष
इनसानों को नहीं सौंपी; क्योंकि इनसान तो इससे पहले कई आसमानी किता
को बरबाद कर चुका है। इसलिए इस आख़िरी किताब की रक्षा का भार ईश्वर
स्वयं अपने ऊपर रखा है –

> "बेशक हमने इस क़ुरआन को अवतरित किया है और हम ही इसके रक्षक हैं।"
>
> – क़ुरआन, 15:9

— ताकि हृदय की पूर्ण संतुष्टि और पूर्ण विश्वास के साथ इस किताब के एक-एक अक्षर को ईश्वर की ओर से माना जा सके और क़ियामत तक पैदा होने वाला हर व्यक्ति इस किताब को खुले दिल के साथ ईश्वर की किताब स्वीकार करके इसके अनुरूप अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

वैसे तो दुनिया का सबसे पहला इनसान जिसे हज़रत आदम (अलै०) के नाम से याद किया जाता है, न केवल यह कि मानव-जाति का पहला बाप है बल्कि वह इनसानी दुनिया का सबसे पहला पैग़म्बर, नबी और रसूल भी है और सबसे पहला मुसलमान (आज्ञापालक) भी। उसका धर्म भी इस्लाम (ईश-आज्ञापालन) ही था। इस्लाम का यह पैग़ाम हज़रत आदम (अलै०) से शुरू हुआ और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) तक आते-आते अपनी पूर्ण शक्ल और आवश्यक विस्तार के साथ पूर्ण हो गया। इस प्रकार इस्लाम के पूरा होने की जो ख़ुशख़बरी सुनाई गई है और जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं ईश्वर ने लिया है, (इस्लाम की) वह पूर्ण शक्ल दुनिया के आसमानी धर्मों में आधुनिकतम शक्ल है। इस तरह इस्लाम सबसे प्राचीन धर्म भी है और नया धर्म भी। उसकी अंतिम किताब अर्थात् क़ुरआन अपनी असली शक्ल में अंतिम नबी अर्थात् हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के युग में लिखी जा चुकी थी। क्योंकि इस किताब की सुरक्षा का दायित्व ईश्वर ने ख़ुद अपने ऊपर ले रखा है, इसलिए सिर्फ़ मुसलमानों ही के लिए नहीं, बल्कि सारी दुनिया के इनसानों के लिए भी अगर कोई प्रामाणिक और पूर्ण रूप से सत्य आसमानी किताब अपने मूल रूप में मौजूद है तो वह यही क़ुरआन मजीद है।

पैग़म्बर (सल्ल०) का तरीक़ा

इसके अतिरिक्त ईश्वर की यह किताब और उसका धर्म जिस पैग़म्बर (हज़रत मुहम्मद सल्ल०) के द्वारा मनुष्यों तक भेजा गया था, उसका व्यक्तित्व भी कोई प्रागैतिहासिक युग का नहीं है जिसकी हर चीज़ अँधेरे के मोटे परदे में छिपी हुई हो और जिसके लिए हमें क़िस्से-कहानियों का सहारा लेना पड़े,

बल्कि यह व्यक्तित्व वर्तमान युग के प्रथम छोर पर उस वक़्त पैदा हुआ जब मानव-ज्ञान परिपक्व हो चुका था। उस पैग़म्बर (सल्ल०) की एक-एक बात और उनके जीवन का एक-एक कृत्य आज भी उसी तरह सुरक्षित है और इतने प्रामाणिक साधन से हम तक पहुँचा है कि उसकी ज़िन्दगी के मामूली से मामूली कार्य के सम्बन्ध में भी हम विश्वासपूर्वक मालूम कर सकते हैं कि पैग़म्बर (सल्ल०) ने वह कार्य किस तरह किया है।

इस्लाम एक क़िला है

ईश्वर की किताब 'क़ुरआन' और उसके पैग़म्बर (सल्ल०) की पवित्र जीवनी हमारे सामने अत्यन्त विशुद्ध रूप में मौजूद है, जिसपर पूरे विश्वास और भरोसे और पूरी सहृदयता के साथ अमल किया जा सकता है। जहाँ तक इस्लाम का सम्बन्ध है, यह एक पूर्ण जीवन-व्यवस्था है। यह मानव-जीवन के प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में पूरा-पूरा पथ-प्रदर्शन करता है और जीवन के किसी मामले को अपनी परिधि से बाहर नहीं छोड़ता। उसका तो कहना है कि इस्लाम एक क़िला है, इसके अन्दर जो इनसान प्रवेश कर गया, वह सुरक्षित हो जाता है और इस क़िले के बाहर इनसानी जीवन का जो भी हिस्सा रह जाएगा, उसपर शैतान अधिकार कर लेगा। इसी कारण क़ुरआन कहता है—

"पूरे के पूरे इस्लाम में प्रवेश करो।" — क़ुरआन, 2:208

और वह यह कहकर इनसान के पूरे जीवन को इस्लाम के क़िले में दाख़िल कर देने की माँग करता है।

इस्लाम एक विशाल वृक्ष के समान है जिसका पौधा तौहीद (एकेश्वरवाद) के बीज से पैदा होता है। इस बीज के फूटने के बाद इस्लाम का यह छोटा-सा पौधा विशाल वृक्ष की सूरत में इनसान के पूरे जीवन पर छा जाता है। मगर जिस तरह वृक्ष की एक-एक नस में अपने बीज के प्रभाव मौजूद रहते हैं, उसी तरह इस्लाम के इस वृक्ष में भी तौहीद (एकेश्वरवाद) का असर मौजूद है। यहाँ कोई अच्छे से अच्छा काम उस समय तक क़बूल होता ही नहीं जब तक कि वह ईश्वर

को मानते हुए उसके डर के साथ न किया गया हो और जब तक कि उस काम की ग़रज़ ईश्वर की ख़ुशी हासिल करना न हो।

इस्लाम वैज्ञानिक धर्म है

इस्लाम अपनी कार्य-विधि की दृष्टि से अपने आप में एक पूर्ण दार्शनिक एवं वैज्ञानिक व्यवस्था है। वह सबसे पहले एक दृष्टिकोण देता है, उस दृष्टिकोण से अनिवार्य रूप से उत्पन्न होनेवाले सिद्धान्तों का वर्णन करता है और फिर उन सिद्धान्तों पर आधारित विस्तृत क़ानून प्रदान करता है। उसका यह तरीक़ा न केवल इस्लाम की अपनी व्याख्या और विश्लेषण के सम्बन्ध में है, बल्कि मानव-जीवन के विभिन्न भागों के सम्बन्ध में भी वह यही तरीक़ा अपनाता है। जिस तरह प्राण शरीर के प्रत्येक अंग और प्रत्येक अंग के एक-एक रेशे से संयुक्त और उसमें समाहित होता है, उसी प्रकार इस्लाम की रूह अपने अंशों के साथ और विभिन्न अंशों के लघु अंशों के साथ सम्बन्ध रखती और क्रियाशील होती है। इस्लाम इस दृष्टि से न केवल यह कि एक पूर्ण वैज्ञानिक जीवन-व्यवस्था है, बल्कि अपनी वैज्ञानिक पद्धति और तर्कशैली के कारण इसे "वैज्ञानिक धर्म" कहना ज़्यादा उचित होगा।

औरत का महत्त्व

इस्लाम सबसे पहले इस बात से बहस करता है कि यह सृष्टि, जिसमें इनसान स्वयं को पाता है, किस तरह पैदा हुई और उसे पैदा करनेवाला कौन है? इसके बाद वह इस सत्य का वर्णन करता है कि इस जगत् में इनसान कहाँ से आया और उसे क्यों पैदा किया गया? फिर वह जीवन की हक़ीक़त के सम्बन्ध में वार्ता करता है कि वह क्या है और कहाँ से आया है?

इस सम्बन्ध में इस्लाम कहता है कि इस जगत् का सृष्टा एक तत्वदर्शी एवं विवेकशील ख़ुदा है जिसने एक योजना के अन्तर्गत इसे अस्तित्व प्रदान किया। वही ख़ुदा इस जगत् को चला रहा है, उसी का आदेश इस सृष्टि में लागू है। मनुष्य

को भी उसी एक ख़ुदा ने पैदा किया है। मानव की पैदाइश दुनिया में ख़ुदा के प्रतिनिधि (ख़लीफ़ा) के रूप में की गई है। उसे उसको मानने और न मानने की आज़ादी प्राप्त है और उसी आज़ादी में उसकी परीक्षा है। यह सांसारिक जीवन यद्यपि अस्थाई है और प्रत्येक वस्तु को, जो इस दुनिया में पैदा हुई है, विनष्ट होना है। मगर जीवन न तो पैदाइश के साथ शुरू होता है और न मौत के साथ ख़त्म होता है, बल्कि जीवन पैदाइश से पहले भी मौजूद रहता है और मरने के बाद भी बाक़ी रहता है। दुनिया में मनुष्य की आयु अत्यन्त सीमित है, मगर जगत् उसके मुक़ाबले में बहुत लम्बी उम्र देकर पैदा किया गया है। इसलिए ईश्वर ने इनसानी नस्ल का सिलसिला बाक़ी और बरक़रार रखने के लिए उसी की जाति से उसका जोड़ा पैदा किया है, ताकि हर व्यक्ति अपना उत्तराधिकारी छोड़कर जाए। अत: फ़रमाया गया —

> ''लोगो! अपने पालनहार से डरो जिसने तुम्हें एक व्यक्ति से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा बनाया।'' — क़ुरआन, 4:1

इस आयत का आरम्भ ही 'लोगो! अपने पालनहार से डरो' द्वारा हो रहा है अर्थात् पहले ही यह बता दिया गया है कि ऐ इनसानो! तुम औरत को शारीरिक रूप में कमज़ोर पाकर और कुछ पैदाइशी कमज़ोरियों के कारण उसे विवश देखकर अत्याचार एवं उत्पीड़न का निशाना बनाते रहे हो। तुमने हमेशा उसका इस प्रकार शोषण किया है जैसे वह इनसान है ही नहीं या शायद अकारण वह तुम्हारे पीछे कहीं से लग गई है, इसलिए तुम उसे कोई महत्त्व भी नहीं देते हो। इसलिए कहा जा रहा है कि यह औरत कोई विचित्र प्राणी नहीं है, बल्कि जिस ख़ुदा ने आदम को पैदा किया है वही ख़ुदा हव्वा का भी पैदा करनेवाला है। उसने औरत को आदम ही से पैदा किया है अर्थात् औरत का पैदा करनेवाला भी वही ख़ुदा है जिसने आदम को पैदा किया है और औरत की सृष्टि भी आदम ही से हुई है। इसलिए औरत की हस्ती कोई अपरिचित और विचित्र नहीं है। चूँकि दोनों का पैदा करनेवाला एक ही ख़ुदा है, इसलिए जिस तरह वह मर्दों पर किसी प्रकार का अत्याचार पसन्द नहीं करता, उसी तरह औरत पर किए गए ज़ुल्म का दण्ड भी

अवश्य देगा। इसलिए कहा जा रहा है कि ख़ुदा से डरो और औरत के साथ न्याय करो। इसी के साथ आदम और हव्वा की उत्पत्ति का कारण भी बता दिया –

"...उन दोनों से बहुत-से मर्द और औरतें दुनिया में फैला दिए।"

– क़ुरआन, 4:1

एक दूसरी जगह इसी बात को स्पष्ट करने के लिए किसान और खेती का उदाहरण प्रयोग किया गया है, ताकि मर्दों को मालूम हो जाए कि उनका सम्बन्ध औरत के साथ वही है जैसा कि एक किसान का सम्बन्ध अपने खेत से होता है। फ़रमाया गया –

"तुम्हारी औरतें तुम्हारी खेतियाँ हैं।" – क़ुरआन, 2:223

अर्थात् जिस तरह किसान का सम्बन्ध अपने खेत से फ़सल प्राप्त करने का होता है उसी तरह मर्द का सम्बन्ध औरत से इनसानी नस्ल की फ़सल हासिल करना होना चाहिए। उसे स्वतंत्र कामवासना की रसिकता प्राप्त करने या उसका यौन-शोषण करने के लिए उसे पैदा नहीं किया गया है।

मतलब यह कि ईश्वर ने इनसानी नस्ल की निरंतरता का प्रबन्ध करके यह भी बता दिया है कि मनुष्य इस दुनिया की ज़िन्दगी में जो कुछ करेगा उसपर उससे जवाब तलब किया जाएगा। इस प्रयोजन के लिए 'हिसाब के दिन' का प्रबन्ध किया गया है। उस दिन ख़ुद अल्लाह तआला अदालत की कुर्सी पर क़ियामत के दिन के मालिक की हैसियत से बैठेगा। दुनिया की इस ज़िन्दगी में जिसने ख़ुदा के आज्ञापालन का मार्ग अपनाया होगा उसे वहाँ ख़ुदा की प्रसन्नता प्राप्त होगी और स्वर्ग के रूप में पुरस्कार दिया जाएगा। मगर वहाँ जो आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला सिद्ध होगा, ख़ुदा उससे अप्रसन्न होगा और नरक उसका ठिकाना होगा। जन्नत की उन नेमतों के सामने इस संसार की बड़ी से बड़ी नेमतें भी तुच्छ हैं और आख़िरत के जीवन के सामने दुनिया के इस छोटे-से जीवन का भी कोई महत्त्व नहीं है। इसलिए ख़ुदा के उन बन्दों को, जिन्हें ख़ुदा की प्रसन्नता अभीष्ट है, साफ़-साफ़ बता दिया गया है कि दुनिया से उनका सम्बन्ध कितना और कैसा होना चाहिए और अपने जीवन का मूल लक्ष्य किस चीज़ को बनाया जाना

चाहिए। अतः फ़रमाया गया –

> "लोगों को चाहत की चीज़ों से प्रेम शोभायमान प्रतीत होता है, औरतें, बेटे, सोने-चाँदी के ढेर, चिह्न लगे (चुने हुए) घोड़े, मवेशी और खेती – ये सब सांसारिक जीवन की सामग्री हैं, और अल्लाह के पास ही अच्छा ठिकाना है।"
>
> – क़ुरआन, 3:14

क़ुरआन मजीद की इन आयतों में परीक्षा के उन प्रश्न-पत्रों का उल्लेख कर दिया गया है जिनका उचित और संतुलित उत्तर ही आख़िरत (क़ियामत के बाद के जीवन) की सफलता और ख़ुदा की प्रसन्नता हासिल करने का साधन बन सकता है। ख़ुदा ने इन प्रश्न-पत्रों का संतुलित जवाब देने के लिए विस्तृत मार्गदर्शन भी अवतरित कर दिया है, मगर चूँकि यह परीक्षा है जिसका जवाब लिखने के लिए पूरी स्वतंत्रता अनिवार्य प्रतिबंधों में से है, इसलिए उत्तर के चयन की आज़ादी के साथ ही साथ इनसान के साथ उसके दो दुश्मन भी लगा दिए गए हैं जो हमेशा उसके उत्तर के संतुलन को बिगाड़ने के लिए सरगर्म रहते हैं, और ये शत्रु हैं – एक इनसान का अपना मन और दूसरा शैतान। ख़ुदा ने इन दोनों दुश्मनों से इनसान को अवगत करा दिया है और यह भी बता दिया है कि परीक्षा के इन प्रश्न-पत्रों में आकर्षण क्यों पैदा किया गया है और इनकी उत्पत्ति के कारण क्या हैं। ये सब वस्तुएँ अपने आप में साध्य नहीं, बल्कि केवल साधन हैं। इनसान को अपनी दृष्टि लक्ष्य पर रखनी चाहिए और लक्ष्यपूर्ति के साधनों को उतना ही महत्त्व देना चाहिए जितने के वे पात्र हों। साधनों को लक्ष्य बना लेना ही वस्तुतः पथभ्रष्टता है। इसलिए 'और अल्लाह के पास अच्छा ठिकाना है' कहकर बता दिया गया है कि जो व्यक्ति इन आकर्षणों में डूब जाने के बजाय उन्हें ईश्वर की हिदायत के अनुसार प्रयोग करके लक्ष्य को प्राप्त करने में लगा रहेगा उसके लिए ख़ुदा के यहाँ सर्वश्रेष्ठ ठिकाना है। ये आयतें वास्तव में मुस्लिम सभ्यता की बुनियाद हैं और यहीं से इस्लामी समाज में औरत का स्थान नियत होता है।

समाज का आरम्भ-बिन्दु

इनसानी समाज की उत्पत्ति का आरम्भ-बिन्दु औरत और मर्द का आपस में

मिल बैठना ही है। उनके मिल बैठने ही से सामूहिक जीवन का आरम्भ होता है। ख़ुद मर्द का जीवन एक पूर्ण इकाई बनता है। दुनिया में जीवन का सिलसिला पैदा होता है, फैलता है और बढ़ता चला जाता है। आबादी बढ़ती रहती है, जीवन की समस्याएँ पैदा होती हैं और नए-नए रूप धारण करती रहती हैं। जब ये बहुत ज़्यादा बढ़ जाती हैं तो इन्हीं समस्याओं को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत एकत्रित कर दिया जाता है और ये जीवन के विभिन्न विभाग कहलाने लगते हैं। अत: इस्लाम ने जीवन के इन्हीं विभिन्न विभागों में से प्रत्येक के लिए विस्तृत क़ानूनों का वर्णन किया है और अनेक हिदायतें दी हैं, ताकि ईश्वर को पूरी कायनात का पालनहार माननेवाले जीवन के मामलात में रहनुमाई के लिए भटकते न फिरें। रहन-सहन भी इनसानी जीवन के विभिन्न अंगों में से एक है। इसलिए इस्लाम ने उसके बारे में भी अपनी नीति का वर्णन किया है, इस नीति पर आधारित सिद्धान्त एवं नियम दिए गए हैं और उन सिद्धान्तों के अनुसार विस्तृत क़ानून भी बनाकर इनसान को दे दिए हैं।

सामाजिक जीवन की नीति

मर्द और औरत की आज़ादी व समानता

सामाजिक जीवन के लिए नीति बना दी गई है कि स्त्री और पुरुष में किसी प्रकार की प्रतिकूलता एवं पृथकता नहीं है, बल्कि औरत की उत्पत्ति आदम ही से है और दोनों का पैदा करनेवाला एक ही ईश्वर है। इसलिए दोनों एक ही ईश्वर की सृष्टि हैं और दोनों सम्मान की दृष्टि से एक ही पदवी के पात्र हैं। औरत और मर्द के कुछ शारीरिक अंगों में अन्तर रखा गया है, इससे किसी को यह भ्रम न हो कि वह कोई अन्य जाति है और मर्द से तुच्छ है, इसलिए बता दिया गया है कि औरत को चूँकि इनसानी नस्ल की फ़सल तैयार करने और दुनिया में जीवन का सिलसिला बनाए रखने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई है, इसलिए इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए उसमें जिन व्यक्तिक गुणों और विभिन्न अंगों की ज़रूरत थी वे उसे प्रदान कर दिए गए हैं, अन्यथा वह भी मर्द ही की तरह इनसान है, ख़ुदा की प्रतिनिधि

(ख़लीफ़ा) है और ख़ुदा की बन्दी भी। इस दृष्टि से मर्द को उसपर किसी प्रकार का न तो वर्चस्व ही प्राप्त है और न बरतरी, बल्कि दोनों में पूर्ण समानता है और वह भी मर्द की तरह आज़ादी की हक़दार है। इसलिए इस्लाम मर्दों की तरह औरतों को भी उसी ईश्वर पर ईमान लाने की दावत देता है जिस तरह मर्दों से माँग करता है और उसी उसूल का अनुकरण कराना चाहता है जिसका अनुकरण मर्द करता है। औरत को भी उसी किताब के पढ़ने का हुक्म देता है जिसे मर्द पढ़ता है और कामों के पुरस्कार व दण्ड के मामले में भी वह मर्द और औरत में कोई भेदभाव नहीं करता। अतः फ़रमाया गया –

> ''बेशक अल्लाह के समक्ष समर्पण कर देनेवाले मर्द और समर्पण कर देनेवाली औरतें, ईमान लानेवाले मर्द और ईमान लानेवाली औरतें, आज्ञापालन करनेवाले मर्द और आज्ञापालन करनेवाली औरतें, सत्यनिष्ठ मर्द और सत्यनिष्ठ औरतें, सब्र करनेवाले मर्द और सब्र करनेवाली औरतें, ईश्वर के प्रति विनम्रता दिखानेवाले मर्द और ईश्वर के प्रति विनम्रता दिखानेवाली औरतें, दान-पुण्य करनेवाले मर्द और दान-पुण्य करनेवाली औरतें, रोज़ा रखनेवाले मर्द व रोज़ा रखनेवाली औरतें, अपने गुप्तांगों की रक्षा करनेवाले मर्द व अपने गुप्तांगों की रक्षा करनेवाली औरतें, और ईश्वर को बहुत अधिक याद करनेवाले मर्द और ईश्वर को बहुत अधिक याद करनेवाली औरतें, इनके लिए ईश्वर ने मग़फ़िरत (मोक्ष) और अज्रे अज़ीम (महान पुरस्कार) तैयार कर रखा है।'' – क़ुरआन, 33:35

इस तरह इस्लाम मर्द और औरत में पूर्ण समानता का आदर्श स्वीकार करता है। यहीं से औरत की पूर्ण स्वतन्त्रता की कल्पना भी उत्पन्न होती है, क्योंकि यदि वह पूर्ण स्वतन्त्र न हो तो फिर किसी भी तरह अपने कामों की ज़िम्मेदार ठहराई नहीं जा सकती। कामों की ज़िम्मेदारी का विचार आज़ादी के बिना सम्भव ही नहीं है। अगर औरत आज़ाद न होती तो वह अपने कामों की ज़िम्मेदार कभी न ठहराई जाती, बल्कि उसके कामों का ज़िम्मेदार मर्द को ठहराया जाता जिसके क़ब्ज़े में रहकर और जिसकी इजाज़त व हुक्म से वह कार्य करने के लिए मजबूर की गई होती। इस तरह औरत इस्लामी समाज में मर्द के बराबर भी मानी गई है और स्वतन्त्र भी। यह है वह आधारभूत नीति जिसे सामाजिक जीवन में इस्लाम

निर्धारित करता है। इसके बाद इस्लाम हर उस बात को पसन्द करता है जिससे औरत की बराबर की हैसियत और उसकी आज़ादी बरक़रार रहे और हर उस बात को नापसन्द करता है जो इसमें रुकावट डाले, और हर उस बात को कठोरता से रोक देता है और हराम क़रार देता है जो उसके इन दोनों अधिकारों को दबाए या समाप्त करे। इस्लाम से पूर्व मर्द को इतिहास के अनेक कालों में औरत पर मालिकाना अधिकार प्राप्त रहे हैं। कहीं औरत पर शौहर के इतने अधिकार स्वीकार कर लिए गए थे कि शौहर उसे क़त्ल तक कर सकता था और कहीं लड़कियाँ पैदा होते ही क़त्ल कर दी जाती थीं। इस्लाम ने औरत को इन दोनों प्रकार के अत्याचारों से नजात दिलाई और औरत के क़ातिल को भी उसी दण्ड का पात्र ठहराया गया, जिसका पात्र उसने मर्द के क़ातिल को ठहराया है। अत: फ़रमाया गया –

> ''जिसने किसी मनुष्य को क़त्ल के बदले या धरती में उत्पात मचाने के अतिरिक्त किसी और कारण से क़त्ल कर दिया, तो उसने मानो समस्त मानवजाति को क़त्ल कर दिया।''
> – क़ुरआन, 5:32

इस आयत में किसी भी इनसान को क़त्ल करने के अपराध की भीषणता का वर्णन किया गया है और चूँकि मर्द के साथ-साथ औरत भी इनसान है, इसलिए औरत के क़ातिल को भी सम्पूर्ण मानवता का क़ातिल कहा गया है। यह आदेश मर्द और औरत की समानता और स्वतंत्रता की रक्षा की समान रूप से ज़मानत देता है।

इस्लाम के अंतिम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के आरंभिक काल तक अज्ञानता में पड़े लोग लड़कियों का पैदा होना अपमान का कारण समझते थे और इसी कारण उन्हें जीवित दफ़न कर देते थे। क़ुरआन मजीद इन मज़लूम (अत्याचार पीड़ित) लड़कियों को भी उनके ज़ालिम माता-पिता के अत्याचार और नृशंसता से छुटकारा दिलाना था, मगर चूँकि इस्लाम वह दीन है जो सृष्टि के रचयिता का भेजा हुआ है, जिसकी दृष्टि में भविष्य में पैदा होनेवाले फ़ितने भी थे, इसलिए इस सिलसिले में क़ुरआन मजीद ने ऐसे व्यापक अर्थवाले शब्दों का

प्रयोग किया है जिनसे भविष्य के उपद्रवों को भी शान्त किया जा सकता है। अरबवाले तो केवल लड़कियों को ही ज़िन्दा दफ़नाया करते थे, किन्तु मिस्र का फ़िरऔन, क़िबती क़बीले की लड़कियों को छोड़कर, लड़कों को क़त्ल कर दिया करता था। इसका अर्थ यह हुआ कि इनसान ने कभी लड़के को क़त्ल किया है तो कभी लड़की को। ऐसी सूरत में यह भी मुमकिन है कि कभी ये दोनों ही क़त्ल करने योग्य ठहरा दिए जाएँ। अगर क़ुरआन लड़कियों को क़त्ल करने से मना करता तो हो सकता है कि लोग इसका मतलब यह लेते कि लड़कों को क़त्ल करने की स्वीकृति इस आयत में मौजूद है। इसलिए क़ुरआन मजीद ने फ़रमाया –

> "निर्धनता के भय से अपनी औलाद को (चाहे वह लड़की हो या लड़का) क़त्ल न करो। हम तुम्हें भी रोज़ी देते हैं और उन्हें भी देंगे।" – क़ुरआन, 17:31

इस तरह इस्लाम ने न केवल यह कि उस युग में क़त्ल की जानेवाली लड़कियों को जीने का अधिकार दिलाया, बल्कि भविष्य के फ़ितनों पर भी रोक लगा दी। क़ुरआन मजीद की इस आयत पर उन लोगों को विचार करना चाहिए जो वर्तमान युग के इस फ़ितने की हिमायत करते हैं जिसे परिवार नियोजन के भ्रामक नाम से फैलाया जा रहा है। क़ुरआन मजीद ने सन्तान को क़त्ल करने के फ़ितने के जिस द्वार को सातवीं शताब्दी में बन्द कर दिया था, वह फ़ितना बीसवीं शताब्दी में सिर उठा रहा है। इस नियोजन का वास्तविक कारण आर्थिक समस्या बताया जाता है। बच्चे कम पैदा करने की माँग ग़रीबी और बेकारी ही के डर से की जा रही है, और इस नियोजन ने इनसान को नृशंसता के उस बिन्दु पर पहुँचा दिया है जहाँ माता-पिता लड़के और लड़की के अन्तर को भी भुला बैठे हैं और गर्भधारण से पहले ही समस्त कार्यवाही हो जाती है। फिर अगर इस मंज़िल पर कोई भूल-चूक हो जाए तो गर्भपात को क़ानून सम्मत बनाकर पेट के बच्चे को ही समाप्त कर दिया जाता है, जिसमें लड़के और लड़की में कोई अन्तर नहीं किया जाता।

वर्तमान युग में आर्थिक आधार पर बच्चों का यह क़त्ल इस बात की निशानी है कि आज का इनसान यह समझ रहा है कि जो बच्चा भी पैदा होता है

वह अपने माता-पिता के भोजन में से हिस्सा बाँटता है और यह कि उस बच्चे का भोजन माता-पिता को देना होगा। अर्थात् ये माता-पिता न केवल इस बात पर विश्वास रखते हैं कि वे स्वयं अपना भोजन अर्जित करते हैं, बल्कि इस बात पर भी विश्वास रखते हैं कि अपने बच्चों को भी वे ही भोजन देते हैं अर्थात् वे स्वयं अपने पालनहार भी हैं और अपनी सन्तान के भी। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें ईश्वर के पालनहार होने पर विश्वास नहीं रहा जो सारे जगत् का पालन कर रहा है। ऐसी दशा में ऐसे लोगों को अपने दृष्टिकोण के पक्ष में व्यर्थ दलीलें लाने के बजाय उन्हें इस बात की चिन्ता करनी चाहिए कि कहीं उनका रिश्ता ईश्वर और ईश-धर्म से टूट तो नहीं रहा है।

इस प्रकार इस्लाम ने औरत की जान की रक्षा करके उसे जीने का अधिकार प्रदान किया और मर्द के साथ समानता और स्वतंत्रता का वातावरण उसके लिए भी पैदा किया। लड़कियों के क़त्ल को हराम और इसको इतना बड़ा अपराध ठहराया कि अज्ञानता-काल के समस्त अपराध ईश्वर के समक्ष स्वयं को समर्पित करके (अर्थात् इस्लाम स्वीकार करने से) माफ़ हो जाते हैं, मगर सन्तान के क़त्ल का अपराध माफ़ नहीं होता। उसके लिए कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा करना अनिवार्य होता है, जैसा कि निम्न शिक्षाओं से विदित है –

एक बार नबी (सल्ल०) के एक सहाबी क़ैस बिन आसिम तमीमी (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से कहा, "मैंने मुसलमान होने से पहले आठ लड़कियाँ ज़िन्दा दफ़न की थीं।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आठों की तरफ़ से आठ ग़ुलाम आज़ाद करो।" उन्होंने कहा, "मेरे पास ऊँट हैं।" आप (सल्ल०) ने आठ ऊँटों (को क़ुरबान करके दान करने) का हुक्म दिया।

(हदीस : बज़्ज़ार, बैहक़ी व हाकिम)

एक बार कबीरा बिन्ते अबी सुफ़यान ने कहा, "मैंने चार (ज़िन्दा) लड़कियाँ दफ़नाई थीं।" आप (सल्ल०) ने चार ग़ुलाम आज़ाद करने का हुक्म दिया।

नबी (सल्ल०) ने लड़कियों के लालन-पालन की प्रेरणा देते हुए इस काम

को बड़े पुण्य और सवाब का काम ठहराया। एक हदीस में फ़रमाया –

"जिसने दो या तीन बेटियों या दो या तीन बहनों की शादी होने तक पालन-पोषण किया या उन्हें छोड़कर मरा तो मैं और वह स्वर्ग में इन उँगलियों की तरह साथ होंगे।"

यह कहते हुए आप (सल्ल०) ने दो उँगलियों को मिलाकर इशारा किया।

नबी (सल्ल०) ने एक और हदीस में फ़रमाया –

"जिसपर इन बच्चियों की ज़िम्मेदारी आई और उसने इसे पूरा किया तो उसपर दोज़ख़ (नरक) हराम है।"

एक और जगह फ़रमाया –

"जिसके यहाँ कोई बेटी हो और वह उसे ज़िन्दा दफ़न न करे, न उसका निरादर होने दे, न बेटों को उसपर प्राथमिकता दे तो ईश्वर उसे जन्नत में दाख़िल करेगा।"

संक्षेप में यह कि इस विषय की अनेक हिदायतें आई हैं जिनके द्वारा नबी (सल्ल०) ने लड़कियों का लालन-पालन करने और उन्हें लड़कों के बराबर समझने पर कहीं स्वर्ग की ख़ुशख़बरी सुनाई है तो कहीं इस काम को जहन्नम (नरक) से बचाव का साधन बताकर समाज में औरत को सुरक्षा, सम्मान, गौरव, स्नेह, उच्च स्थान, इज़्ज़त और आदर प्रदान किया है।

कुछ एहतियाती नियम

इस्लाम ने औरत को ये सारी सुरक्षाएँ प्रदान करने के बाद इनसानी समाज के लिए कुछ एहतियाती नियम निश्चित कर दिए हैं जिनपर इस्लाम की पूरी सामाजिक व्यवस्था स्थित है। इस्लाम के महान विद्वान मुहम्मद क़ुत्ब के शब्दों में –

"इस्लाम जीवन-लक्ष्य को पूरा करनेवाली स्वाभाविक अन्त:प्रेरणाओं को कुचलता नहीं है, बल्कि उसके ज़ाहिर होने पर ऐसी पाबंदियाँ लगाता है जो उसे व्यक्तिक और समष्टीय हितों और मस्लिहतों के अनुसार बना दें। इस तरह इस्लाम स्वयं जीवन-लक्ष्य की ओर पथ-प्रदर्शन करता है और इनसान की सभ्य प्रकृति को मद्देनज़र रखते हुए उसपर कोई ऐसी बात् लागू नहीं करता जो उसके प्राकृतिक स्वभाव के विरुद्ध हो, और न उसपर ऐसे कामों का करना आवश्यक

ठहराता है जिनका करना उसकी शक्ति के परे हो।''

''इस्लाम इजाज़त देता है कि लोग अपनी काम-भावनाओं को कुचलने के बजाय कामेच्छा की पूर्ति करें। वह इस इच्छा को पूरा करने की केवल इजाज़त ही नहीं देता, बल्कि इनसान को तैयार करता और लालसा दिलाता है। मगर इस्लाम इस बात की इजाज़त नहीं देता कि इनसानों में आपसी मेल-मिलाप की रीति इस प्रकार की हो, जिस प्रकार पशुओं में होती है। क्योंकि इस्लाम निश्चित रूप में इनसान को पशुओं से बहुत उच्च एवं महान समझता है, और यह एक वैज्ञानिक तथ्य भी है जो धर्मों को एक ओर रखते हुए भी सिद्ध हो चुका है।''

''इस्लाम इनसान को बहुत उच्च क्षितिज से देखता है। उसके भूत, वर्तमान और भविष्य पर इस तरह नज़र रखता है जैसे मानव-जीव एक निरंतराल, संयुक्त और जुड़ी हुई ज़ंजीर है। इसलिए इस्लाम किसी एक व्यक्ति के व्यक्तिक जुनून का साथ नहीं देता, क्योंकि उसे पूरी तरह यह ज्ञान है कि कुछ समय बीतने के बाद उसका यह जुनून उसे बरबाद कर देगा। इस्लाम किसी एक व्यक्ति के अधीन नहीं होता, क्योंकि उसकी नज़र अन्य सभी लोगों पर भी है जो उस व्यक्ति के कार्य से नुक़सान उठा सकते हैं। हालाँकि यह सभी लोगों का हक़ है कि वे नुक़सान से बचें या बचाए जाएँ और जीवन शान्ति से गुज़ारें। इस्लाम किसी नस्ल विशेष की सेवाओं के अधीन भी नहीं है, क्योंकि उसे मालूम है कि उस नस्ल के कामों से आनेवाली नस्लें नुक़सान उठाएँगी।''

''इस्लाम इनसानियत की गिरावट में इनसान का साथ नहीं देता, क्योंकि उसके दृष्टिकोण के अनुसार मानव-जीवन का लक्ष्य उन्नति और उत्थान है, गिरावट और अवनति नहीं। यह भी एक वैज्ञानिक सत्य है जो अक़ीदे से अलग रहकर भी सिद्ध हो चुका है। इस्लाम सिर्फ़ जैविक कार्यों की पूर्ति को पर्याप्त नहीं समझता; क्योंकि उसे मालूम है कि केवल जैविक कार्य मानव-जीवन के लिए अपर्याप्त हैं। स्वयं जीवन में सौन्दर्य-उत्पत्ति जैविक आचरणों से भिन्न चीज़ है और जीवन को मात्र जैविक सौन्दर्य की आवश्यकता अपरिहार्य रूप से नहीं है, किन्तु फिर भी सौन्दर्य जीवन में एक प्रिय वस्तु है।''

''इस्लाम पसन्द नहीं करता कि मानवता गिरावट और अवनति के ऐसे स्थान पर आ जाए जहाँ तमाम इनसानों के क्रिया-कलाप समान हो जाएँ और सब-के-सब केवल सहज प्रवृत्तियों के कर्मों में ही व्यस्त हो जाएँ। क्योंकि इस्लाम इस

हक़ीक़त को मानता है कि लोगों में भावनाओं और इच्छाओं का अन्तर भी उसी तरह होता है जिस तरह शक्ति, सामर्थ्य, बुद्धि और धन में अन्तर है, और इनसानियत का आपसी अन्तर और कमी-बेशी जीवन का क़ानून और ज़िन्दगी का लक्ष्य है, और अगर इनसानियत अवनति और पतन के गर्त में गिर जाए तो यह लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता।"

"अत: इस्लाम प्रत्येक क्षण समस्त जीवनोद्देश्य को पूर्ण करने पर मानवता को बिना किसी चीज़ के तैयार करता है। अतएव, जब वह कामेच्छा को नस्ल बढ़ाने के लिए ज़रूरी विचार करता है तो लोगों को इस इच्छा की पूर्ति की इजाज़त भी देता है, और जब वह इस इच्छा-पूर्ति के तरीक़ों को स्वच्छ और सभ्य बनाता है तो वह इस हक़ीक़त को भी ध्यान में रखता है कि जीवन-ध्येय उन्नति है और इनसान को इस 'उन्नति' पर क़ाबू प्राप्त है। इस सिलसिले में इस्लाम इनसान पर न तो अनुचित बोझ डालता है और न उसे संन्यासी बनने को कहता है, बल्कि संन्यास और संसार-त्याग को धार्मिक कर्त्तव्यों के पूरा करने में कोताही समझता है।" – इस्लाम और जदीद माद्दी अफ़कार (उर्दू), पृ० 387 से 390

इन सतर्क सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए इस्लाम अपने समाज का इस प्रकार सन्तुलित गठन करता है कि उसमें मर्द और औरत दोनों की आज़ादी और समानता की पूरी-पूरी रक्षा हो जाती है। और इस माहौल में दोनों की वैयक्तिक और लैंगिक योग्यताओं का भरपूर विकास होता रहता है। इनसान के सामाजिक इतिहास का गहरी नज़र से अध्ययन करने पर मालूम होता है कि अभी तक इनसान ने जितनी भी सामाजिक व्यवस्थाएँ स्थापित की हैं उनमें सदैव औरत को ही नुक़सान उठाना पड़ा है। उसकी व्यक्तिगत हैसियत को नकारा गया। उसे दास और शूद्र के स्थान पर पहुँचा दिया गया। उसके जीवन को मूल्यहीन समझा गया। उसे मृत पति के साथ जीवित जला दिया गया। पति की पूजा करना उसका कर्त्तव्य ठहराया गया। मर्द की काम-तृष्णा पर उसे भेंट चढ़ाया गया। दुकान और मकान की तरह उसे किराए पर चलाया गया। उसको भयभीत और त्रस्त रखकर उसके व्यक्तित्व को कुचला गया। पैदा होते ही उसे क़त्ल किया गया। हर तरह उसका शोषण होता रहा और उसे कभी आज़ादी और शान्ति का एक साँस भी नहीं लेने दिया गया। हालात से मजबूर होकर उसे अपने भाग्य पर सन्तुष्ट होना पड़ा। इस

उद्देश्य के लिए सबसे ज़्यादा धर्म का प्रयोग किया गया, कभी राजनीतिक हित उसके कारण बने तो कभी सामाजिक आवश्यकताओं का सहारा लिया गया। मानव-इतिहास में हमेशा मर्दों के द्वारा औरत का यह शोषण इस बात का लक्षण है कि मर्द हमेशा शक्तिशाली और आक्रामक रहा है इसीलिए उसने सदा शोषण किया है। इसकी एक वजह यह रही है कि अभी तक सारी सामाजिक व्यवस्थाएँ पुरुषों ही ने गठित की हैं, इसलिए समाज-गठन के समय उन्होंने सदैव अपने पौरुषिक हितों और अपनी लैंगिक अपेक्षाओं को इस प्रकार प्राथमिकता दी कि औरत उनकी दृष्टि में केवल कामपूर्ति का साधन बनकर रह गई। बीसवीं शताब्दी में अवश्य यूरोप के असर और प्रचार की वजह से औरत की स्वतन्त्रता और समानता का शोर सुनाई देने लगा है। लेकिन इस शोर में भी मालूम ऐसा होता है कि यहाँ भी मर्द की अपनी चालाकी और मक्कारी पूरा काम कर गई और औरत का हाल भूतकाल से भी अधिक बुरा होकर रह गया है।

यूरोपीय आधुनिक समाज के अध्ययन से मालूम होता है कि उसने आज़ादी और समानता की पवित्र बोतलों में अमृत के बजाय घातक विष उंडेल दिया है और नादान औरत इस विष को अमृत समझकर जाम पर जाम पिए जा रही है और आज़ादी व समानता की मदहोशी में मस्त होकर सब कुछ भूल चुकी है, जबकि इस विष ने उसके स्त्रीत्व को मौत के घाट उतार दिया है। यूरोप ने औरत को जो कुछ देने का शोर मचाया था वह तो उसने औरत को आज तक नहीं दिया, मगर उसे स्त्रीगुणों से वंचित करके औरत और मर्द के बीच का एक ऐसा विचित्र जीव बना दिया जो अंगों के अनुसार तो औरत मालूम होती है, किन्तु आचरण में ख़ुद को मर्द साबित करती रहती है। वह इस आंतरकि संघर्ष में बेदम हो चुकी है, मगर आज़ादी और समानता की शराब फिर भी अपना असर दिखा रही है और अभी तक उसे स्वयं के व्यक्तित्व का ज्ञान नहीं हो सका है। क्योंकि –

ख़्वाब से बेदार होता है कभी महकूम अगर।
फिर सुला देती है उसको हुक्मराँ की साहिरी॥

(अर्थात् अगर अधीनस्थ कभी निद्रा से जागता भी है तो शासक का जादू

उसे फिर सुला देता है।)

यद्यपि इन परिस्थितियों के परिणाम में पश्चिम लैंगिक स्वच्छन्दता की लानत में तो फँसकर रह ही गया है, साथ ही 'मर्द बेकार व ज़न तही आग़ोश'[1], की लानत भी उसपर छा चुकी है। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि पाश्चात्य दुष्प्रचार ने औरत पर इस सीमा तक जादू कर दिया है कि वह इस क़ाबिल भी नहीं रही कि अपनी प्रकृति को समझ सके। औरत उस धोखे में मस्त है जो पश्चिम के दार्शनिक उसे दे रहे हैं। क्या इस ज़ुल्म की भी कोई सीमा है कि एक तरफ़ औरत इनसानी नस्ल को बाक़ी रखने का कर्तव्य भी निभाती रहे, मर्द के लिए सन्तान पैदा करे, पूरे नौ माह इस बोझ को सँभालती रहे, फिर बच्चा पैदा होने के बाद अपनी कम हुई शक्तियों को जमा करे और बच्चे को दो साल तक दूध पिलाती रहे। और इसके बाद फिर अपने उसी स्वाभाविक कार्य में व्यस्त हो जाए और इन सबके साथ ही पहले बच्चे की शिक्षा एवं उसके लालन-पालन की चिन्ता भी रखे। इस विशाल कर्तव्य को पूरा करने के बाद भी मर्द उसकी रोज़ी-रोटी की ज़िम्मेदारी न ले और इस मैदान में भी उसे मर्द के साथ दौड़ना पड़े– वह राजनीतिक और सामाजिक कार्यकलापों में व्यस्त रहे, दुकान, बाज़ार और पार्कों में मर्द की नज़रबाज़ियों के लिए मौजूद रहे, उसे शराब पिलाकर बदमस्त करे, उसका दिल बहलाने के लिए कैबरे और क्लबों में नाचे और मर्द कामवासना की पूर्ति के लिए सदा तैयार रहे, और फिर भी मर्द अपने इन कारनामों के परिणाम की ज़िम्मेदारी उठाने के लिए तैयार न हो और उसे सन्तान को क़त्ल करने पर राज़ी करने के लिए नित नए तरीक़ों की शिक्षा देता रहे।

इस तरह गुज़रे हुए ज़माने में ही नहीं, बल्कि वर्तमान युग में भी उन्नति के नाम पर औरत का निकृष्टतम सीमा तक यौन-शोषण किया जा रहा है। इस अबला का विगतकाल में भी शोषण होता रहा, और आधुनिक काल की ज्ञानात्मक एवं चिंतनात्मक और वैज्ञानिक उन्नति भी उसको शोषण से बचाने में असफल हो चुकी है।

1.मर्द बेकार और औरत ख़ाली-गोद

इस्लामी समाज की विशेषता

इस मामले में इस्लामी समाज का सबसे बड़ा गुण यह है कि उसका सृजनकर्ता न मर्द है न औरत। इसलिए इन दोनों में से किसी के लिए भी समस्त विशेषाधिकार ख़ास नहीं किए गए हैं। इस्लामी विधान का सृजनकर्ता वह पाक परवरदिगार है जो न केवल इस कायनात (सृष्टि) का, बल्कि ख़ुद इनसान (मर्द और औरत) का भी सृजनकर्ता है और इन दोनों की उत्पत्ति भी उसकी योजनानुसार होती है। इसलिए इस्लामी समाज में न मर्द का शोषण मुमकिन है और न औरत का। फिर जिस ईश्वर ने औरत और मर्द के शरीर के अंगों और उनकी बौद्धिक व मनोवैज्ञानिक योग्यताओं को पैदा किया है, वही उनके बारीक से बारीक मामलात और समस्याओं को अच्छी तरह जानता है। इस्लामी समाज के गठन में इन सब पहलुओं का ध्यान रखा गया है।

इस्लामी समाज का बुनियादी लक्ष्य औरत और मर्द के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास व उत्थान है। व्यक्तित्व के इस विकास के लिए ज़रूरी है कि समाज में इन दोनों जातियों को ऐसा माहौल उपलब्ध कराया जाए जहाँ दोनों पूरी यकसूई और लगन के साथ अपने व्यक्तित्व-निर्माण में लगे रहें। ऐसे माहौल के लिए ज़रूरी है कि सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार की बनाई जाए कि दोनों भय और त्रास के वातावरण से सुरक्षित रहें, उनमें आत्म-विश्वास उत्पन्न हो सके, किसी प्रकार के ख़तरों का भय न हो, मानसिक विच्छृंखलता से सुरक्षित रहें और मानसिक उलझनें पैदा न हो सकें। मानसिक योग्यता, शारीरिक बनावट, लिंगीय-गुण, भावनात्मक स्थिति, स्वाभाविक रुझान और लैंगिक आकर्षण की रिआयत की गई हो और शोषण की संभावना दूर-दूर तक न हो। एक ऐसे माहौल में ही इस बात की संभावना हो सकती है कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ बुलन्दियों को छू सके। लेकिन यह याद रहे कि इस्लाम व्यक्तित्व की उन्नति एवं विकास का अर्थ भी स्वयं बताता है। उसके अनुसार व्यक्तित्व के विकास और उन्नति का अर्थ यह होता है कि हर व्यक्ति पूरी शक्ति के साथ उस लक्ष्य को पूरा करने में ज़्यादा-से-ज़्यादा कामयाबी हासिल करे जिसके लिए उसे

पैदा किया गया है। इस्लाम की दृष्टि में किसी भी मूल्य पर यह उन्नति एवं विकास है ही नहीं कि मर्द औरत के क्षेत्र में दाख़िल होकर उसे चैलेंज करने लगे या औरत मर्द बनकर उससे मुक़ाबला करने लगे। यह इस्लाम की दृष्टि में व्यक्तित्व का विकास और उन्नति नहीं, वरन् उसकी अवनति है। इस्लाम इस बात को विकसित होना कहता ही नहीं कि सूरज अपनी किरणों द्वारा रौशनी फैलाने के बजाय किसी और ग्रह से प्रकाश प्राप्त करने लगे और इस तरह चाँद से मुक़ाबला करने की बेवक़ूफ़ी करे या चाँद, सूरज से प्रकाश लेना छोड़कर उसके कक्ष में दाख़िल हो जाने की हिम्मत कर बैठे। स्पष्ट है, ऐसी कोई भी मूर्खता सूरज का पतन तो कहलाएगी ही मगर चाँद की तबाही भी निश्चित हो जाएगी और सृष्टि-गठन में अड़चनें डालकर पूरी व्यवस्था की तबाही का कारण बनेगी।

व्यक्तित्व का विकास

मर्द और औरत के सम्बन्ध में भी इस्लाम का दृष्टिकोण कुछ ऐसा ही है। उसकी दृष्टि में औरत का विकास यह है कि उसकी समग्र योग्यताओं का विकास उसके स्त्रीत्व की सुरक्षा के साथ इस तरह हो कि वह औरत होने की हैसियत से अपने सारे कर्तव्यों को भली-भाँति और सफलतापूर्वक पूरा कर सके। इसी तरह मर्द के व्यक्तित्व के विकास का अर्थ भी इस्लाम के अनुसार यह है कि उसका विकास इस तरह होता रहे कि उसमें मर्दाना गुण ज़्यादा-से-ज़्यादा अच्छे ढंग से और पूर्ण रूप से कार्यान्वित रहें। इसी लिए इस्लाम मर्दों पर औरतों की नक़ल करने को हराम क़रार देता है और औरतों को भी मर्दों की नक़ल करने से मना करता है। मर्द में स्त्री-गुणों के पैदा हो जाने को वह मर्द की अवनति कहता है और औरत में मर्द की नक़ल करने के रुझान को स्वयं औरत की तबाही और सामाजिक जीवन की मौत ठहराता है। इसलिए इस्लाम अपनी सामाजिक-व्यवस्था के द्वारा ऐसा माहौल पैदा करता है जिसमें मर्द का विकास मर्द होने की हैसियत से होता रहे और औरत का औरत होने की हैसियत से। यही विकास इस्लाम की भाषा में उन दोनों का वैयक्तिक विकास है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह समाज में समानता और आज़ादी की ज़मानत देता है और उसी के अन्तर्गत वह काम और

कार्यक्षेत्र निर्धारित करता है।

जैसा कि ऊपर गुज़र चुका है कि इस्लाम मर्द और औरत की पूर्ण समानता का क़ायल है, लेकिन इस्लाम 'समानता' के इस शब्द को न तो धोखा देने के लिए प्रयोग करता है और न ही नशा पैदा करनेवाले पेय के रूप में प्रयोग कराकर बदमस्त करने के लिए। बल्कि इस शब्द को भी वह ख़ुद अपना अर्थ प्रदान करता है। वह पश्चिमी दर्शनों की तरह मर्द और औरत को हर प्रकार से समान नहीं ठहराता और न ही वास्तव में वे हर प्रकार से समान हैं। औरत और मर्द के शरीर का एक-एक अंग एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न होता है। औरत की हड्डियाँ मर्द से भिन्न, उसकी शक्ल मर्द से अलग, उसकी आवाज़ मर्द से अलग, यहाँ तक कि उसकी चाल, उसकी पसन्द, उसकी स्वाभाविक रुचि, उसकी भावनाएँ, उसके सोचने का ढंग, उसकी मानसिक स्थिति, कहने का मतलब यह कि उसकी कोई एक चीज़ भी मर्द के समान नहीं है। इसके अलावा ख़ुद अपने शरीर की बाहरी और भीतरी बनावट में भी वह मर्द से भिन्न होती है। यह भिन्नता यहाँ तक बढ़ी हुई है कि औरत के गोश्त के रेशों की बनावट तक मर्द के गोश्त के रेशों से भिन्न होती है।

औरत और मर्द के जिस्म, योग्यताओं और उसके अंगों की इस भिन्नता की शुरुआत उस वक़्त से हो जाती है जब माँ के पेट में गर्भाधान का आरम्भ होता है।

> "The sex of offspring is determined at fertilization by the kind of Spermatozoon that happens to reach and enter the egg, the 'X' bearing sperms produce girl and 'Y' bearing ones boy."
>
> (Princples of Genetics by Sunneo II Bunn, Dolizhanoky, P-145)
>
> (बच्चे के लिंग का फ़ैसला उत्पत्ति-कारक शुक्राणु की उस क़िस्म से हो जाता है जो गर्भधारण के समय अण्डे तक पहुँचता है और उसमें दाख़िल हो जाता है। "X" अर्थात एक्स स्पर्म के मिलने से लड़की और "Y" अर्थात वाई स्पर्म के मिलने से लड़का पैदा होता है।)

यह खोज भी उसी यूरोप की है जो सामाजिक विषयों में औरत को बिलकुल

मर्द के समान ठहराता है। मगर ख़ुद विज्ञान के द्वारा खोज करके बताता है कि गर्भ-धारण के साथ ही लड़की या लड़के की संरचना-कार्य का निर्धारण हो जाता है, यहाँ तक कि लड़की या लड़के की शक्ल में उसकी पैदाइश हो जाती है। मानो कि औरत और मर्द की संरचनात्मक भिन्नता गर्भाधान से शुरू होती है और मौत तक बढ़ती चली जाती है। मगर यही यूरोप ख़ुदा जाने कैसे अपने प्रोपगेण्डे की धोखापूर्ण कला के साथ सारी दुनिया को धोखा देने में कामयाब भी हो जाता है, और ख़ुदा जाने दुनिया ने भी यह धोखा कैसे खा लिया। शायद इससे बड़ा धोखा इनसानियत ने अपने इतिहास में इससे पहले कभी न खाया होगा जो उसे बीसवीं शताब्दी के ज्ञान-विज्ञान के युग में खाना पड़ा। लेकिन इस्लाम का मामला इस सिलसिले में बिलकुल अलग है। वह पहले ही क़दम पर दोनों को अलग जिन्स क़रार देता है और उनकी स्वाभाविक बनावट, प्राकृतिक रुझान, लिंगीय गुण और जातीय कर्तव्य को साथ रखकर औरत और मर्द को इनसान होने की दृष्टि से समान ठहराता है। मगर वह यूरोप की तरह काम की समानता का क़ायल नहीं है, बल्कि 'जीवन की सुविधाओं में समानता' का क़ायल है। काम के प्रकार के नियत करने में और कर्त्तव्यों के निश्चित करने में तो इस्लाम दोनों लिंगों की योग्यताओं, शक्तियों, आवश्यकताओं और कमज़ोरियों को सामने रखता है और उनके लिए ऐसे कार्यक्षेत्र निश्चित करता है जिनमें उनके व्यक्तित्व का पूरा विकास हो सके। किन्तु काम के प्रकार और कार्य-क्षेत्र की भिन्नता के बावजूद इस्लाम जीवन की सुविधाओं में पूर्ण समानता उपलब्ध कराता है।

उत्पत्ति-कार्य चूँकि प्रकृति की मंशा और मक़सद है जिसके लिए उसने इनसान को मर्द और औरत की दो अलग-अलग जातियों में बाँटकर उनके ज़िम्मे काम को बाँट दिया है। इस बँटवारे में मर्द के हिस्से में 'कर्त्ता' की हैसियत आती है तो औरत के हिस्से में 'कर्म' की। कार्यक्षेत्र में कर्त्ता सदा प्रभाव डालने की योग्यता रखता है, जबकि कर्म में प्रभाव स्वीकार करने का गुण होता है। मगर चूँकि ज़िम्मेदारियों का यह बँटवारा जगत् के पैदा करनेवाले की ओर से उसकी योजना के अन्तर्गत अमल में आता है, जिसमें न मर्द की पसन्द का कोई दख़ल

है और न औरत की पसन्द का, इसलिए न कर्त्ता की हैसियत को मर्द के लिए गौरव कहा जा सकता है और न औरत की हैसियत उसके लिए अनादर का कारण बन सकती है। ऐसी स्थिति में इस्लाम दोनों वर्गों को अपने-अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी को भली-भाँति पूरा करने को गौरव का विषय मानता है और सिर्फ़ हैसियत के इस फ़र्क़ की वजह से न तो किसी को नीच और तुच्छ क़रार देता है और न ही किसी को गर्व करने और घमण्डी बनने की इजाज़त देता है। लेकिन इस्लाम जब सामाजिक ज़िम्मेदारियाँ विभाजित करता है और कार्यक्षेत्र निश्चित करता है तो इन हैसियतों को ध्यान में अवश्य रखता है, क्योंकि दोनों लिंगों को जो योग्यताएँ प्रदान की गई हैं वे उनकी हैसियत के अन्तर को ध्यान में रखकर ही प्रदान की गई हैं। इसलिए उनको ध्यान में न रखने की वजह से मुमकिन था कि इन दोनों में से किसी की ओर वह कर्त्तव्य लगा दिया जाता जिसे करने की शक्ति व योग्यता उसमें है ही नहीं, या हो सकता है कि उस कर्त्तव्य की पूर्ति उसके स्वाभाविक कामों में अड़चन पैदा करने का कारण बन जाती या उन योग्यताओं को नष्ट कर देती।

कार्यक्षेत्र का निर्णय

इस्लाम ने इन सब हितों को नज़र में रखकर औरत का कार्यक्षेत्र, उसके घर और ख़ानदान को निर्धारित किया है; क्योंकि साधारणत: औरत के ज़िम्मे सबसे पहले घर और गृहस्थी के काम आते हैं, फिर गर्भ के समय में वह दौड़-धूप करने के क़ाबिल भी नहीं रहती, बल्कि उल्टे निगरानी और सुरक्षा की मोहताज हो जाती है। फिर पूरे नौ माह बच्चे के निर्माण-काल के बाद बच्चे की पैदाइश से निपटकर उसे दूध पिलाने, उसकी सुरक्षा और देख-रेख में जुट जाती है। इस तरह औरत स्वाभाविक कार्यों और लैंगिक विशेषताओं की वजह से जीवन का बड़ा भाग घर के अन्दर गुज़ारने पर स्वाभाविक रूप से पाबन्द होती है। इसी लिए इस्लाम ने भी उसके कार्यक्षेत्र को घर तक सीमित रखते हुए उसको ख़ानदानी ज़िम्मेदारियाँ सौंपी हैं। इसके अलावा घर से बाहर की बेशुमार ज़िम्मेदारियाँ

इस्लाम मर्द के हवाले कर देता है जिसकी क्षमता उसमें पहले से होती है और जिनकी पूर्ति से उसके व्यक्तित्व का न केवल निर्माण होता है, बल्कि उसमें निखार आता है और उसका विकास भी होता है। लेकिन कार्यक्षेत्र और कार्य-विभाजन के इस फ़र्क़ की वजह से इस्लाम औरत को जीवन की सुविधाओं से न तो महरूम करता है और न उसमें किसी तरह की कमी ही बर्दाश्त करता है, बल्कि पूर्ण समानता की ज़मानत देता है और मानवाधिकारों के मामले में, जैसा कि गुज़र चुका है, किसी प्रकार के भेदभाव की गुंजाइश नहीं रखता। इस कारण –

(1) इस्लाम मर्द और औरत में इनसान होने की हैसियत से कोई भेदभाव नहीं करता। उसके अनुसार जो अधिकार मर्द को प्राप्त हैं, वही औरत को भी प्राप्त हैं।

(2) इस्लाम औरत से भी उन्हीं बातों पर ईमान लाने को कहता है जिनपर ईमान लाना वह मर्दों के लिए ज़रूरी ठहराता है।

(3) इस्लाम औरत पर भी उसी प्रकार ईश्वरीय आदेशों को लागू करता है जिस प्रकार वह मर्दों पर करता है।

(4) इस्लाम औरत से भी उसी क़ुरआन मजीद का पठन (तिलावत) कराता है जिसकी वह मर्द से माँग करता है।

(5) इस्लाम के अनुसार औरत भी अपने कर्मों के लिए ख़ुदा के सामने उसी तरह ज़िम्मेदार है जिस तरह मर्द को ज़िम्मेदार ठहराया गया है।

(6) आख़िरत में औरत की भी उसी तरह मग़फ़िरत (मोक्ष) होगी जिस तरह मर्द की होगी।

(7) इस्लाम के अनुसार औरत भी उसी तरह आदर के योग्य है जिस तरह मर्द।

(8) मर्द की तरह औरत भी अपनी जायदाद और दौलत की पूर्णतः मालिक होती है, जिसपर उसकी मरज़ी के बिना उसका पति भी अधिकार नहीं रख सकता।

(9) इस्लाम औरत की जान को भी उतना ही क़ीमती समझता है जितनी की

उसके नज़दीक़ मर्द की जान की क़ीमत होती है।

(10) इस्लाम औरत को भी मर्द की तरह तर्के (छोड़ा हुआ माल) में से विरासत प्राप्त करने का हक़ देता है।

(11) क़ानूनी और इनसानी अधिकारों के बारे में औरत भी मर्द ही की तरह समान समझी जाती है।

(12) इस्लाम विवाह के द्वारा औरत के व्यक्तित्व को मर्द में विलीन नहीं करता, बल्कि उसके बाद भी उसके व्यक्तित्व को मान्यता देता है।

(13) इस्लाम पति और पत्नी दोनों को एक-दूसरे का जीवन साथी क़रार देता है। वह इनमें से न तो किसी को पूज्य ठहराता है, न पुजारी।

क़ुरआन मजीद औरत और मर्द की इस समानता का बड़े अच्छे अन्दाज़ में वर्णन करते हुए औरत को मर्द का लिबास और मर्द को औरत का लिबास ठहराता है –

"वे तुम्हारे लिए लिबास (परिधान) हैं और तुम उनके लिए लिबास हो।"

– क़ुरआन, 2:187

इस प्रकार इस्लाम पत्नी और पति के बीच असाधारण निकटता और अपनेपन की भावना पैदा कर देता है। लिबास का काम व्यक्तित्व में गौरव उत्पन्न करना, मौसम के प्रभाव से रक्षा करना और शरीर की कमियों को छिपाए रखना होता है। पत्नी और पति एक-दूसरे की ज़रूरतें बड़ी ख़ूबी से पूरी करते हैं। इनके अलावा लिबास का सबसे बड़ा काम तो यह होता है कि वह मर्द और औरत दोनों के गुप्तांगों को दुनिया की नज़रों से छिपाए रखता है, मगर उसी वक़्त वह उनसे सबसे ज़्यादा निकट भी रहता है। इस तरह लिबास गुप्तांग और दुनिया के बीच पर्दे का काम करता है। पति, पत्नी के लिए और पत्नी, पति के लिए बिलकुल यही हैसियत रखते हैं। दोनों के गुप्तांग सारी दुनिया की नज़रों से ओझल रहते हैं, मगर आपस में उनमें कोई पर्दा नहीं होता। इस तरह दोनों एक-दूसरे के लिए गोपनीयता, निकटता, अपनेपन और भरोसे की निशानी बन जाते हैं। इसलिए क़ुरआन की

उपरोक्त आयत की वर्णन-शैली ने मर्द और औरत की समानता की धारणा के सम्बन्ध में सफलतापूर्वक प्रकाश डाला है। समाज की इन दोनों जातियों की समानता से लाभ उठाने के लिए यह भी आवश्यक है कि समाजिक-व्यवस्था इस तरह व्यवस्थित की गई हो कि उससे उत्पन्न वातावरण में मर्द और औरत दोनों अज़ाद माहौल में साँस ले सकें। शब्द 'आज़ादी' अपनी पूर्ण धारणा में बड़ा ही सुन्दर, मनमोहक और आकर्षक शब्द है। मगर इस दुनिया में अबाध आज़ादी कहीं न तो मौजूद ही है और न इसके मौजूद होने की कोई संभावना है। इसलिए कि इस दुनिया की व्यवस्था ही कुछ ऐसे उसूलों पर क़ायम है कि यहाँ आज़ादी किसी एक वस्तु को भी हासिल नहीं है। एक व्यक्ति की आज़ादी किसी न किसी शक्ल में दूसरे की ग़ुलामी और कष्ट का कारण बनी हुई है या बन जाती है। इसलिए इस जगत् में आज़ादी और ग़ुलामी साथ-साथ चलती हैं। ग़ुलामी के बिना यहाँ आज़ादी की कोई कल्पना है ही नहीं। चाँद अपने परिक्रमा-मार्ग में पूरी तरह आज़ाद है, मगर आज़ादी के नशे में सूरज के मार्ग में उसका प्रवेश उसी समय पूरी सृष्टि की तबाही भी है। वह अपने मार्ग में चक्कर लगाने में आज़ाद है, मगर इस आज़ादी में वह ग़ुलामी भी इसके साथ लगी हुई है कि वह पृथ्वी का भी चक्कर लगाता रहे। आज़ादी के नशे में सड़क पर सोनेवाले व्यक्ति को ड्राइवर की आज़ादी मौत की गोद में भी पहुँचा सकती है। इस कारण दुनिया में अबाध आज़ादी की कोई धारणा नहीं है, बल्कि यहाँ आज़ादी की एक ऐसी सीमित धारणा पाई जाती है जो अनेक पाबन्दियों से जकड़ी हुई होती है, ताकि इन्हीं पाबन्दियों में व्यक्ति अपनी आज़ादी से इस प्रकार लाभ उठाता रहे कि उसकी आज़ादी दूसरे की आज़ादी के लिए रुकावट पैदा न कर सके।

सनोबर बाग़ में आज़ाद भी है, पा-ब-गिल भी है।
इन्हीं पाबन्दियों में हासिल आज़ादी को तू कर ले।।

(अर्थात् जिस प्रकार चीड़ के पेड़ की जड़ें मिट्टी में होती हैं, किन्तु यह पेड़ मिट्टी और भूमि से आज़ाद होकर वायुमण्डल में बढ़ता और अपनी शाख़ें फैलाता है और मिट्टी का पाबन्द बनकर नहीं रह जाता, इसी प्रकार विभिन्न पाबंदियों के

होते हुए तुझे अपनी आज़ादी व स्वतन्त्रता को प्राप्त करना है।)

अतः इस्लाम भी जगत् में जारी आज़ादी की इस कल्पना को स्वीकार करता है और इनसानी समाज के चाँद और सूरज (औरत और मर्द) की परिक्रमा के लिए उनके मार्ग इस तरह निश्चित कर देता है कि दोनों अपने-अपने कक्ष की सीमा में रहते हुए पूर्ण स्वतंत्रता का आनन्द लें और अपने व्यक्तित्व का यथासंभव विकास करते रहें।

निकाह

इस्लाम का सामाजिक गठन चूँकि ख़ुदा का गठित किया हुआ है, जो औरत और मर्द दोनों का पैदा करनेवाला है, इसलिए उसे औरत और मर्द दोनों प्रिय हैं। और चूँकि वह किसी की तबाही से बेतअल्लुक़ नहीं रह सकता, इसलिए उसने इस प्रबन्ध में इस बात की पूरी रिआयत रखी है कि औरत की आज़ादी की पूरी रक्षा भी हो जाए और वह किसी ख़तरे में भी न पड़े। इसलिए इस्लाम केवल 'निकाह' को ही औरत और मर्द के सम्बन्ध का एकमात्र साधन निश्चित करता है। इसके अलावा सारे दूसरे साधन जिनसे कोई मर्द किसी औरत से शारीरिक सम्बन्ध क़ायम करे, उन्हें वह हराम (अवैध) ठहराता है। अतः निकाह की पाबन्दी लगाते हुए फ़रमाया जा रहा है –

> "इन हराम ठहराई गई औरतों के अलावा जितनी औरतें हैं सब तुम्हारे लिए हलाल हैं, मगर (सिर्फ़ उसी शक्ल में कि) अपने माल ख़र्च करके उनको अपने निकाह में ले आओ। न यह कि स्वतन्त्र (अर्थात बिना निकाह किए) शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने लगो।" – क़ुरआन, 4:24

ऐसे चरित्रहीन लोगों से अपने समाज को पाक रखने के लिए इस्लाम ज़िना (व्यभिचार) को बेहयाई का बदतरीन रास्ता ठहराते हुए इस कार्य के प्रति घृणा पैदा करता है –

> "...ज़िना (व्यभिचार) के निकट भी न फटको, वास्तव में वह सरासर बेहयाई और बहुत बुरा रास्ता है।" – क़ुरआन, 17:32

क़ुरआन की सूरा मोमिनून में नमाज़ में ध्यान लगाने और विनम्रता अपनाने

क़े साथ अपने गुप्तांगों की रक्षा को सफलता की अनिवार्य शर्त ठहराया गया है–

"यक़ीनन कामयाब हुए ईमानवाले जो अपनी नमाज़ों में विनम्रता अपनाते हैं......और अपने गुप्तांगों की रक्षा करते हैं (पाकीज़गी की ज़िन्दगी गुज़ारते हैं)।"
– क़ुरआन, 23:1-5

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया –

"जो मुझे अपनी ज़बान और अपने गुप्तांग (को ख़ुदा की नाफ़रमानी से बचाने) की ज़मानत दे, मैं उसके लिए जन्नत की ज़मानत देता हूँ।"
– हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम

एक और हदीस में नबी (सल्ल०) फ़रमाते हैं –

"हर रोज़ नए शारीरिक स्वाद के मतवालों पर ख़ुदा लानत फ़रमाता है। अल्लाह ने उन मर्दों और उन औरतों पर लानत भेजी है जो नए-नए लैंगिक स्वाद लेते फिरते हैं।"

उपरोक्त क़ुरआनी आयतों, हदीसों और इसी विषय से सम्बन्धित अन्य आयतों व हदीसों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस्लाम औरत और मर्द दोनों के कार्यक्षेत्रों को अलग करके इस बात की यथासम्भव कोशिश करता है कि इन दोनों में से कोई एक-दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप करके उसकी आज़ादी को बरबाद न करे और एक-दूसरे के लिए कठिनाइयाँ पैदा करने का कारण न बने जिससे किसी की आज़ादी को चोट पहुँचे और उसके व्यक्तित्व के निर्माण में रुकावट पैदा हो। ज़िना (व्यभिचार) यौन-शोषण की बदतरीन शक्ल है और यौन-शोषण मानसिक और मनोवैज्ञानिक शोषण पैदा करता है। इसलिए इस्लाम अपने समाज में इसको (ज़िना को) कठोरता से बहिष्कृत कर देता है और किसी हाल में भी इसे बरदाश्त करने को तैयार नहीं है।

इसलिए इन सारी कोशिशों के बावजूद भी जब कोई व्यक्ति मुस्लिम समाज में ज़िना (व्यभिचार) का अपराध करता है तो इस्लाम ऐसे व्यक्ति को, चाहे वह मर्द हो या औरत, अपने समाज में किसी भी मूल्य पर बरदाश्त करने को तैयार नहीं होता; क्योंकि इस्लाम के अनुसार, "फ़ितना क़त्ल से भी ज़्यादा भयानक

है।'' अतः वह ऐसे व्यक्तियों से अपने समाज को पवित्र रखने के लिए सज़ा निश्चित करता है –

> ''ज़ानी औरत (व्यभिचारिणी) और ज़ानी मर्द (व्यभिचारी) में से हर एक को सौ कोड़े मारो, और ख़ुदा के दीन के बारे में उनपर दया करने की भावना तुममें न पैदा हो, अगर तुम ख़ुदा और क़ियामत पर विश्वास रखते हो। और उनको दण्ड देते समय ईमानवालों का एक दल मौजूद रहे।'' – क़ुरआन, 24:2

— ताकि लोग शिक्षा ग्रहण करें और अगर कोई बिगड़ा हुआ व्यक्ति इस अपराध की हिम्मत कर रहा हो तो अपराधी का परिणाम देखकर बाज़ आ जाए।

संक्षेप में यह कि इस्लाम जब मर्द और औरत की आज़ादी और समानता का एलान करता है तो यह केवल 'धोखा' और 'शासकों की जादूगरी' नहीं होता, बल्कि इस्लाम ख़ुद उसे लागू करने की ज़मानत भी देता है और इस मार्ग की हर रुकावट का इलाज भी ख़ुद करके दोनों के लिए उपयुक्त माहौल पैदा करता है। वह अपनी प्रतिज्ञा में इतना खरा है कि किसी पत्नी के पति तक को इस बात की इजाज़त नहीं देता कि वह अपनी पत्नी पर ज़िना का इलज़ाम लगाए। अगर कोई पति यह अपराध करता है तो इस्लाम पति पर उसको साबित करने की ज़िम्मेदारी डालता है, और अगर वह इलज़ाम को साबित न कर सके तो इस्लाम उसको अस्सी कोड़े की सज़ा देता है। इस तरह इस्लाम ने अपने समाज में औरत और मर्द दोनों के लिए उपयुक्त माहौल पैदा करने का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया है।

औरत के लिए क़िला

इस्लाम ईश्वर की ओर से अवतरित दीन है। इस दीन को भेजनेवाला ख़ुदा अपने बन्दों पर माँ से भी सत्तर गुना अधिक मेहरबान है , जैसा कि नबी (सल्ल०) ने बताया है। इसलिए इस्लामी समाज में ज़िना करनेवालों के लिए इतना कठोर दण्ड निश्चित करके ही वह सन्तुष्ट नहीं हो जाता, बल्कि उसका लक्ष्य समाज में पवित्र माहौल पैदा करना है ताकि मर्द और औरत दोनों को व्यक्तित्व के विकास का उचित अवसर प्राप्त हो सके। इसलिए वह केवल सज़ाएँ निश्चित करके ही

सन्तुष्ट नहीं हो जाता, बल्कि उसके साथ ही सुरक्षा का प्रबन्ध भी करता है जिनके होते हुए ज़िना तक पहुँचने की संभावना ही न रहे। सबसे पहले वह औरत के कार्यक्षेत्र के चारों ओर एक मज़बूत दीवार बनाता है जिसके अन्दर रहकर औरत पूरी आज़ादी, बेफ़िक्री और निडरता के साथ समानता और आज़ादी का आनन्द उठाती रहे। इस्लाम की बनाई इस दीवार का नाम है 'परदा'। वह परदे के द्वारा औरत और मर्द के बेरोक-टोक मिलन पर पाबन्दी लगाता है, जिसके नतीजे में औरत हमेशा बनी-ठनी रहकर मर्द का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने से बाज़ रहती है और न मर्द अपना समय और योग्यताएँ औरत की ताक-झाँक और उसको अपनी ओर आकर्षित करने में बरबाद करता है। इस्लाम इस क़िले में औरत को सुरक्षित करके उसमें ताला लगा देता है और उसकी चाबी निकाह के अवसर पर उसके पति के हवाले कर देता है, ताकि इस सुरक्षित क्षेत्र में उस एक मर्द के अलावा कोई दूसरा दाख़िल न हो सके। वह इस क़िले को औरत के लिए आजीवन कारावास भी नहीं बनने देता, इसलिए औरत के निकट सम्बन्धियों से मिलने-मिलाने की उसको पूरी आज़ादी भी देता है। मगर वह इसके साथ मर्दों और औरतों को दो भागों — महरम और ग़ैर महरम[1] — में विभाजित करके मर्दों और औरतों के उस गिरोह को जिसको इस क़िले के क़रीब जाने की इजाज़त होती है, एक-दूसरे पर हराम क़रार देता है (अर्थात् किसी हालत में भी उनका आपस में विवाह हो ही नहीं सकता)। और इस तरह ज़िना के फ़ितने को समाप्त करके इन सम्बन्धों में पाकीज़गी, आदर और निस्स्वार्थता पैदा कर देता है। वे लोग मूर्ख हैं जो इस सुरक्षा-प्रबन्ध को औरत के लिए क़ैदख़ाना और उसकी ग़ुलामी कहते हैं। हाँ, ये वे लोग हो सकते हैं जो औरत के सतीत्व पर आक्रमण करने के इच्छुक हों जिसे इस्लाम के इस सुरक्षा-प्रबन्ध ने असंभव बना दिया है।

---

1. महरम–जिनमें परस्पर कभी शादी-विवाह नहीं हो सकता, जैसे भाई-बहन, बाप-बेटी, सास-दामाद आदि। महरम से परदा नहीं है। नामहरम–जिनमें परस्पर शादी हो सकती हो, उनसे परदा करने का हुक्म है।

इस्लाम औरत की इस्मत, शील और पाकदामनी की रक्षा के लिए केवल इस क़िले का निर्माण करके सन्तुष्ट नहीं हो जाता है, बल्कि निकाह के राजमार्ग के अलावा इस क़िले में प्रवेश के सब रास्ते बन्द कर देता है और उसकी दीवारों के चारों तरफ़ रक्षा-चौकियाँ बना देता है, ताकि दूर-दूर तक कोई ख़तरा पैदा न हो सके। वह माता-पिता को आदेश देता है कि बालिग़ होने के फ़ौरन बाद अपनी लड़की की शादी कर दें। नौजवानों को आदेश देता है कि ब्रह्मचर्य का जीवन ख़त्म करके फ़ौरन किसी औरत से निकाह कर लें।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया –

"निकाह मेरी सुन्नत (तरीक़ा) है। जो मेरी सुन्नत से कतराता है, वह मेरा नहीं है।"

एक और हदीस में फ़रमाया –

"निकाह को तर्क करना इस्लाम में नहीं है।"

एक और हदीस में है –

"जो अल्लाह से पाक और पाकीज़ा होकर मिलना चाहता है, उसे विवाह करना चाहिए।"

हज़रत अनस (रज़ि०) से बयान की गई हदीस में इरशाद हुआ –

"जिसने निकाह किया उसने आधा ईमान मुकम्मल कर लिया, अब शेष आधे में उसे अल्लाह से डरना चाहिए।"

समाज में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो ग़रीबी और दरिद्रता के डर से निकाह नहीं करते हैं कि अगर उन्होंने निकाह कर लिया तो ख़र्च बढ़ जाएगा और जीवन-स्तर गिर जाएगा। इस्लाम ऐसी मानसिकता को ईमान की कमज़ोरी और ख़ुदा के पालनहार होने पर शक का होना क़रार देता है। अत: ऐसे लोगों को नबी (सल्ल०) ने नसीहत फ़रमाई –

"औरतों से निकाह करो, वे तुम्हारी आमदनी में बरकत का कारण होंगी।"

हज़रत जाबिर (रज़ि०) की रिवायत में है –

"तीन व्यक्तियों की मदद करना अल्लाह अपने ज़िम्मे लेता है— एक ग़ुलाम को आज़ाद करनेवाला, दूसरा बंजर ज़मीन को आबाद करनेवाला और तीसरा वह जो ख़ुदा के भरोसे शादी करता है।"

इस तरह इस्लाम न केवल यह कि इस रक्षा और क़िले का निर्माण करके सन्तुष्ट हो गया, बल्कि उसने उसमें सेंध लगानेवाले सभी लोगों को शादी की प्रेरणा देकर उसके लिए पैदा होनेवाले सारे ख़तरों को जड़ से मिटा दिया। इसके बावजूद उसने औरतों को हुक्म दिया कि वे मर्दों के बीच आज़ादी से घूमती न फिरें, अपने सौन्दर्य को अपने पति के अलावा बाक़ी सारे मर्दों से छिपाए रखें, शरीर के अंगों को दिखाती न फिरें, आवाज़ करनेवाला ज़ेवर पहनकर और तेज़ ख़ुशबू लगाकर बाहर न निकलें। मजबूरी में अगर निकलना ही पड़े तो स्वयं को अच्छी तरह ढाँककर निकलें, ताकि मर्दों के लिए नज़रबाज़ी का कारण न बन सकें। दूसरी ओर मर्दों को भी आदेश दिया कि वे अपनी नज़रें नीची रखें और औरतों को घूरते न फिरें, इसलिए कि ज़िना का प्रारम्भिक बिन्दु यही नज़रबाज़ी है। इस्लाम नज़र के इस काम (नज़रबाज़ी) को 'आँखों का ज़िना' ठहराता है। औरत की आवाज़ भी जादू जगाने में किसी से कम नहीं है, इसलिए इस्लाम उन्हें यह हिदायत देता है कि वे इस तरह बात न करें कि ग़ैर-मर्दों के कानों तक उनकी आवाज़ जाए और आवाज़ के असर से उनके दिलों में देखने की इच्छा पैदा हो।

संक्षेप में यह कि इस्लाम ने जहाँ औरत की आज़ादी की रक्षा के लिए और उसे शारीरिक शोषण से बचाए रखने के लिए जिस क़िले का निर्माण किया, उसकी दीवार के चारों ओर सुरक्षा-चौकियाँ बनाकर और सुरक्षा-प्रबन्ध करके उसे पूर्ण रूप से सुरक्षित कर दिया है, वहीं यदि कोई दुराचारी व्यभिचार करे तो इस्लाम ने ऐसे व्यक्ति से समाज को पवित्र करने का प्रबन्ध भी कर दिया है।

ख़ानदानी व्यवस्था

इन समस्त व्यवस्थाओं के बाद इस्लाम नस्ल की पैदाइश की तरफ़ ध्यान देता है और इस बात को निश्चित करने की चिन्ता करता है कि औरत और मर्द के

सम्बन्ध किस प्रकार के हों? वह इस विषय को बुनियादी महत्त्व देता है, इसलिए कि इस्लाम की नज़र में इनसानी समाज की बुनियादी ईंट कुटुम्ब है, जिसका आरम्भ एक मर्द और एक औरत के शारीरिक सम्बन्ध से होता है। उसकी दृष्टि में इनसानी समाज एक गगन चुम्बी इमारत है जिसकी एक-एक ईंट को परिवार अर्थात् ख़ानदान का नाम दे दिया गया है। इस इमारत की सुन्दरता, मज़बूती और स्थायित्व इस बात पर निर्भर है कि उसकी एक-एक ईंट पूर्ण, सुडौल, मज़बूत और अच्छी तरह पकी हुई हो, साथ ही उनका निर्माण दूसरी ईंटों को ध्यान में रखकर किया गया हो।

इसलिए इस्लाम सबसे ज़्यादा ध्यान सामाजिक इमारत की एक-एक ईंट पर केन्द्रित कर देता है। फिर चूँकि इस्लाम प्राकृतिक धर्म है, इसलिए वह जहाँ मर्द और औरत की सामाजिक मर्यादाएँ निश्चित करने में सृष्टि की व्यवस्था से सामंजस्य की चिन्ता करता है, वहीं दोनों के शारीरिक सम्बन्ध के स्थायित्व में भी प्रकृति के इशारों की उपेक्षा नहीं करता।

इस्लाम की ख़ानदानी व्यवस्था

इस्लाम अपनी सामाजिक व्यवस्था में प्रकृति के इशारों और उनसे हासिल होनेवाली रहनुमाई को ध्यान में रखता है। इसलिए वह औरत के शील और स्त्रीत्व को बुनियादी महत्त्व देता है और हर स्तर पर उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करता है। वह औरत को निकाह के द्वारा एक मर्द के लिए निश्चित करता है और जीवन-भर उस सम्बन्ध को निभाने की प्रतिज्ञा कराता है, ताकि सामाजिक इमारत की ईंट रूपी ये इकाइयाँ मज़बूत और दृढ़ सम्बन्धों में कसकर एक मज़बूत इमारत बना सकें तथा इन ईंटों से बनी हुई इमारत में भी स्थायित्व बना रहे और उसकी छाया में इनसानियत की नई नस्ल पैदा होती, परवान चढ़ती और शिक्षा-दीक्षा पाती रहे और सामाजिक इमारत को सदा बने रहने का अवसर प्राप्त हो सके। इस्लाम प्राकृतिक नियमों से बग़ावत नहीं करता, बल्कि उससे समायोजित समाज का निर्माण करता है।

पारिवारिक व्यवस्था चूँकि इस्लाम के द्वारा हो रही है, जो अपनी प्रकृति में अनुशासन को बुनियादी महत्त्व देता है, इसलिए जहाँ भी दो इनसान जमा हुए वह फ़ौरन उनको व्यवस्थित रूप से संगठित होने की राय देता है, यहाँ तक कि अगर दो व्यक्ति एक साथ यात्रा कर रहे हों तो वह उन्हें भी सलाह देता है कि अपने में से किसी एक व्यक्ति को सरदार नियुक्त कर लें। तो फिर इस्लाम ख़ानदानी-व्यवस्था में संगठन को कैसे भुला सकता है ? इसलिए उसने यहाँ भी संगठित होने का हुक्म दिया है।

उसूली तौर पर तो उसका हुक्म है –

"औरतों के लिए भी प्रचलित तरीक़े पर वैसे ही अधिकार हैं जैसे मर्दों के अधिकार उनपर हैं।" – क़ुरआन, 2:228

लेकिन इसके बावजूद सामूहिक अनुशासन पैदा करने के लिए ज़रूरी था कि पति और पत्नी में से किसी एक को दूसरे पर वर्चस्व प्रदान किया जाता। अतः इस मसले को सुलझाने के लिए भी इस्लाम ने बड़ा हकीमाना (दूरदर्शितापूर्ण) ढंग अपनाया है –

★ औरत का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी तक सीमित है, जबकि मर्द का कार्यक्षेत्र सारी दुनिया पर फैला हुआ है।

★ औरत शारीरिक रूप में मर्द के मुक़ाबले में कमज़ोर होती है। औरत की विशेषता सौन्दर्य और नज़ाकत है, जबकि मर्द की विशेषता शक्ति और शौर्य, जुरअत और हौसला और अंगों की मज़बूती है।

★ आमतौर से औरत मानसिक, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक रूप से मर्द से कमतर होती है।

★ औरत पर भावनाओं का असर मर्द की अपेक्षा जल्दी होता है और उसकी अक़्ल पर भी भावुकता शीघ्र क़ब्ज़ा जमा लेती है।

★ औरत स्त्रीवत कमज़ोरियों की वजह से कुछ विशेष अवसरों पर रोगी की-सी हालत में रहती है, जबकि मर्द के साथ ऐसी कोई मजबूरी नहीं है।

★ औरत अपने प्राकृतिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए घर पर ज़्यादा रहती है, जबकि मर्द ज़्यादा देर तक घर से बाहर रह सकता हैं।

★ घर को चलाने के लिए आर्थिक साधनों की प्राप्ति सबसे कठिन मसला है जिसे इस्लाम मर्द की ज़िम्मेदारी क़रार देता है और औरत को इससे मुक्त रखता है।

★ नस्ल की पैदाइश के अमल में मर्द की हैसियत 'कारक' और औरत की 'कर्म' की होती है और कारक सदा कर्म से बड़ा माना गया है।

इसलिए इस्लाम औरत का कर्तव्य केवल पति की अमानतों की सुरक्षा, पति का आज्ञापालन, बच्चों का लालन-पालन और पति को दिए गए वचनों को ईमानदारी और वफ़ादारी के साथ निभाने को निश्चित करता है। ऐसी दशा में इस्लाम ने फ़ैसला किया कि चूँकि –

"मर्दों को औरतों पर एक दर्जा हासिल है।" – कुरआन, 2:228

इसलिए –

"मर्द औरतों के संरक्षक और निगराँ हैं, इस कारण कि अल्लाह ने कुछ को कुछ से आगे रखा है, और इसलिए भी कि मर्द अपना माल औरतों पर ख़र्च करते हैं।" – क़ुरआन, 4:34

इन कारणों से इस्लाम मर्द को औरत का निगराँ क़रार देकर उसे कुटुम्ब का सरदार नियुक्त करता है। इस नियुक्ति के बाद भी इस्लाम इस बात की चिन्ता करता है कि कहीं मर्द अपनी हैसियत का अनुचित प्रयोग करके उसकी रक्षा करनेवाले क़िले को बन्दीगृह न बना दे। इसलिए यहाँ भी इस्लाम औरत के लिए सुरक्षाएँ नियत करता है और उसे हक़ देता है कि वह अपनी जायदाद की मालिक रहेगी। शादी की वजह से पति उसकी जायदाद का मालिक नहीं बन सकता है। उसे अपनी सम्पत्ति पर पूरे मालिकाना हक़ प्राप्त हैं। इस्लाम पति पर अनिवार्य ठहराता है कि शादी के वक़्त औरत को महर के नाम से कोई रक़म या तो उसी वक़्त अदा करे या जब भी वह तलब करे उसे दे। औरत इस माल की भी पूरे तौर पर मालिक है। इस्लाम उसे माँ-बाप की जायदाद में से हिस्सा दिलाता है और

पति की ज़ायदाद में भी उसका हिस्सा निश्चित करता है। इसके अलावा औरत यदि शरीअत की हदों में रहते हुए कुछ कमाए तो वह अपनी कमाई की ख़ुद मालिक होती है। इसके बावजूद उसके समस्त ख़र्चों की ज़िम्मेदारी मर्द पर होती है। विधवा होने की दशा में इस्लाम उसे पूरी इजाज़त देता है कि वह दूसरा विवाह करे। पति के मर जाने से न वह मनहूस (अभागिन) होती है और न अपमानित और पतित। जीवन और मृत्यु ख़ुदा के हाथों में है, इसलिए इसका किसी पर कोई असर नहीं पड़ता। अगर विवाह के बाद, ईश्वर न करे, अनुभव से यह बात मालूम हो कि यह शादी अनुचित व्यक्ति के साथ हो गई है तो इस्लाम सबसे पहले क्षमा और दरगुज़र से काम लेकर सुलह-सफ़ाई की बातों पर अमल करने की हिदायत करता है। और अगर समस्त तदबीरें असफल हो जाएँ तो मर्द को अधिकार देता है कि वह औरत को तलाक़ दे दे, साथ ही वह औरत को भी अधिकार देता है कि अगर वह महसूस करे कि जिस मर्द से उसका विवाह हुआ है उसके साथ निबाह करना सम्भव न होगा तो वह पति से 'ख़ुलअ' की माँग करके इस सम्बन्ध को समाप्त करा ले। इस तरह इस्लाम ख़ुदा के नाम के साथ और उसकी गवाही में की गई शादी को क़ैदख़ाना नहीं बनने देता और हर स्तर पर औरत की आज़ादी और समानता की रक्षा करता है।

यह है वह बुद्धिमत्तापूर्ण, अत्यन्त सन्तुलित और आश्चर्यजनक सामाजिक व्यवस्था जो इस्लाम मानवजाति को प्रदान करता है।

मुस्लिम पर्सनल लॉ और क़ुरआन के प्रमाण

पिछले अध्याय में यह बात आ चुकी है कि इस्लाम एक पूर्ण जीवन-व्यवस्था है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से लेकर उसके समष्टीय व सामाजिक जीवन तक के हर विभाग से सम्बन्धित पूर्ण और विस्तृत मार्गदर्शन देता है। यह बात भी गुज़र चुकी है कि सामाजिकता भी चूँकि मानव के सामूहिक जीवन का एक ऐसा विभाग है जिसकी व्यापकता मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन पर हावी है, इसलिए इस्लाम इस सम्बन्ध में भी विस्तृत आदेश देता है।

इस बात की भी चर्चा हो चुकी है कि सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में इस्लाम का दृष्टिकोण क्या है, उसकी कार्य-नीतियाँ क्या हैं, वह किन सावधानियों को ध्यान में रखता है और उसकी बनाई हुई व्यवस्था मानव-प्रकृति और सृष्टि-प्रकृति से किस प्रकार तालमेल और सन्तुलन रखती है। फिर यह बात भी गुज़र चुकी है कि उसकी सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार सन्तुलन व समानता और न्याय व इनसाफ़ पर आधारित है।

चूँकि मानव-समाज की आधारभूत इकाई परिवार होता है, इसलिए इस्लाम उसके गठन और उसकी व्यवस्था के बारे में विस्तृत आदेश देता है। इस्लाम का आधार प्रथमत: क़ुरआन मजीद है जिसमें अल्लाह तआला के आदेश सीधे और स्पष्ट बयान हुए हैं; पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की हदीसों में उन्हीं की व्याख्याएँ की गई हैं और रसूल (सल्ल०) के पवित्र जीवन में उन्हीं का व्यावहारिक प्रतिपादन प्रदर्शित हुआ है। बाद के युगों में इस्लामी विधिवेत्ताओं (फ़क़ीहों) ने दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली सम्भावित समस्याओं को उन्हीं की रौशनी में हल करने की कोशिश की है। इसलिए मुनासिब मालूम होता है कि क़ुरआन

मजीद से यह मालूम करने की कोशिश की जाए कि वह पारिवारिक जीवन (मुस्लिम पर्सनल लॉ) के बारे में क्या आदेश देता है? विस्तृत अध्ययन करनेवाले लोग हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की हदीसों, उनकी पवित्र जीवनी और इस्लामी विधिवेत्ताओं (फ़क़ीहों व इमामों) के इस विषय पर लिखे गए लेखों व रचनाओं से लाभ उठा सकते हैं।

(1) वे औरतें जिनसे निकाह हराम (अवैध) है

इस्लाम सबसे पहले औरतों को दो भागों में विभाजित करता है। उनमें औरतों का एक प्रकार वह है जिससे निकाह करना पूर्ण रूप से हराम (वर्जित) ठहरा दिया गया है और ऐसी औरतों को शरीअत की परिभाषा में 'महरम औरत' कहा गया है। अतः क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला का आदेश है –

> "तुमपर हराम (अवैध) की गईं तुम्हारी माएँ, बेटियाँ, बहनें, फूफियाँ, ख़ालाएँ (मौसियाँ), भतीजियाँ, भाँजियाँ और तुम्हारी वे माएँ जिन्होंने तुम्हें दूध पिलाया हो, और तुम्हारी दूध-शरीक बहनें और तुम्हारी बीवियों की माएँ और तुम्हारी बीवियों की लड़कियाँ जिन्होंने तुम्हारी गोदों में परवरिश पाई है। जिन पत्नियों से तुम संभोग कर चुके हो उनकी लड़कियाँ। वरना अगर (सिर्फ़ निकाह हुआ हो और) संभोग न हुआ हो तो (उन्हें छोड़कर उनकी लड़कियों से निकाह कर लेने में) तुम्हारी कोई पकड़ नहीं है। और तुम्हारे उन बेटों की बीवियाँ जो तुम्हारे औरस पुत्र हों और यह भी तुमपर हराम किया गया है कि (एक निकाह में) दो बहनों को इकट्ठा करो। मगर जो पहले हो गया सो हो गया। अल्लाह बख़्शनेवाला और दया करनेवाला है। और वे औरतें भी तुमपर हराम हैं जो किसी दूसरे के निकाह में हों, अलबत्ता ऐसी औरतें इससे अलग हैं जो (पराजित सेना से इस्लामी राज्य की अधीनता में आएँ और उनकी मान-मर्यादा की रक्षा व भरण-पोषण हेतु इस्लामी शासन द्वारा) तुम्हारे हिस्से में दे दी जाएँ। यह अल्लाह का क़ानून है जिसकी पाबन्दी तुमपर लाज़िम कर दी गई है।" – क़ुरआन, 4:22-24

क़ुरआन मजीद की इन आयतों में जिन औरतों से निकाह और यौन-सम्बन्ध स्थापन को वर्जित किया गया है उनसे एक मुसलमान किसी भी हाल में निकाह करने की बात सोच भी नहीं सकता। इसके बावजूद अल्लाह तआला ने इस

आदेश पर चलने की पूरी ताकीद करके उसे और भी लाज़िमी कर दिया है।

क़ुरआन मजीद की इन आयतों की व्याख्या करते हुए वर्तमान युग के सुप्रसिद्ध टीकाकार (मुफ़स्सिर) मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी फ़रमाते हैं –

> ''माँ के अन्तर्गत सगी और सौतेली दोनों प्रकार की माएँ आती हैं, इसलिए दोनों हराम हैं। .....बेटी के आदेश में पोती और नवासी भी सम्मिलित हैं। .....बहनों में सगी बहन और माँ शरीक बहन और बाप-शरीक बहन तीनों सम्मिलित हैं। इन सब रिश्तों में भी सगे और सौतेले के बीच कोई अन्तर नहीं है।''

इस बारे में पूरी मुस्लिम उम्मत सहमत है कि एक लड़के या लड़की ने जिस औरत का दूध पिया हो, उसके लिए वह औरत माँ के आदेश के और उसका पति बाप के आदेश के अन्तर्गत है। और वे सारे रिश्ते जो वास्तविक माँ और बाप के सम्बन्ध से हराम होते हैं, दूध-शरीक माँ और बाप के सम्बन्ध से भी हराम हो जाते हैं। बीवियों की लड़कियाँ से तात्पर्य वे लड़कियाँ हैं जो बीवी के पहले पति से पैदा हुई हों, वर्तमान शौहर (पति) के लिए ये लड़कियाँ भी हराम हैं चाहे उसकी परवरिश कहीं भी हुई हो। तुम्हारे उन बेटों की बीवियाँ जो तुम्हारे औरस पुत्र हों (अर्थात् तुम्हारे अपने वीर्य से उत्पन्न हों), यहाँ 'औरस' की क़ैद इसलिए लगाई गई है कि मुँहबोले बेटे या गोद लिए हुए बेटे की बीवी को हराम नहीं ठहराया गया है, सिर्फ़ सगे बेटे की बीवी बाप के लिए हराम है। दो बहनों के जमा करने के हुक्म में यह भी शामिल है कि ख़ाला (मौसी) और भाँजी और फूफी और भतीजी को भी एक साथ निकाह में रखना हराम है। इस मामले में सिद्धान्त यह है कि ऐसी दो औरतों को निकाह में जमा करना बहरहाल हराम है जिनमें से अगर कोई एक मर्द होती तो उसका निकाह दूसरी से हराम होता।

(2) वे औरतें जिनसे निकाह जाइज़ (वैध) है

उपरोक्त विवरण तो उन औरतों का था जिन्हें अल्लाह तआला ने हराम (विवाह हेतु अवैध) ठहरा दिया है। इसके बाद हलाल औरतों (जिनसे निकाह किया जा सकता है) के बारे में फ़रमाया –

"इनके अलावा जितनी औरतें हैं उन्हें अपनी सम्पत्तियों (मह्‌र की रक़म) के द्वारा हासिल करना तुम्हारे लिए हलाल कर दिया गया है, इस शर्त के साथ कि निकाह के बन्धन में उनको सुरक्षित करो, न यह कि स्वतंत्र रूप से व्यभिचार करने लगो।"
— क़ुरआन, 4:24

इस तरह अल्लाह तआला ने कुछ औरतों से निकाह करने पर पाबन्दी लगाकर बाक़ी सारी औरतों को हलाल कर दिया है, ताकि मर्द उनमें से किसी से भी निकाह करके घरेलू जीवन के सुख-आनन्द भोग सके; यहाँ तक कि अहले-किताब (यहूदी और ईसाई) औरतों से भी निकाह करने की इजाज़त देकर और भी व्यापकता ला दी है। अतः फ़रमाया –

"और सुरक्षित औरतें भी तुम्हारे लिए हलाल हैं, चाहे वे ईमानवालों के गिरोह से हों या उन क़ौमों से जिनको तुमसे पहले किताब दी गई थी, बशर्ते कि तुम उनके मह्‌र अदा करके निकाह में उनको सुरक्षित करो, न यह कि स्वतंत्रतापूर्वक व्यभिचार करने लगो या चोरी-छिपे प्रेम करो।"
– क़ुरआन, 5:5

(3) मह्‌र

क़ुरआन की इन आयतों के अध्ययन से मालूम होता है कि निकाह के साथ मह्‌र की रक़म का निर्धारण भी आवश्यक है। अर्थात् परस्पर सहमति से एक ऐसी रक़म का निर्धारण किया जाए जिसे पत्नी को देना पति पर अनिवार्य हो। मह्‌र की इस रक़म का निर्धारण इतना आवश्यक है कि अगर किसी कारण मह्‌र की रक़म का निर्धारण निकाह के समय नहीं किया जा सके तो बाद में शौहर को 'मह्‌रे मिस्ल' अदा करना ज़रूरी होगा। अर्थात् पति के लिए आवश्यक होगा कि वह पत्नी को उतनी रक़म अनिवार्य रूप से अदा करे जो पत्नी के ख़ानदान में उसी उम्र, सौन्दर्य, स्वास्थ्य और योग्यतावाली किसी दूसरी लड़की के लिए मह्‌र के रूप में निश्चित की गई हो।

(4) मह्‌र की अदायगी

मह्‌र की अदायगी ख़ुशदिली से करने की ओर भी स्पष्ट आदेश दिए गए हैं।

अतः फ़रमाया –

> ''फिर जो दाम्पत्य जीवन का सुख तुम उनसे उठाओ उसके बदले उनके महर अनिवार्यतः अदा करो।''
> – क़ुरआन, 4:24

(5) स्वतंत्रतापूर्वक व्यभिचार और पर-स्त्री गमन

इस्लाम एक ऐसा समाज बनाना चाहता है जिसमें चरित्र की पवित्रता को मौलिक महत्त्व प्राप्त हो। इसी लिए उसने काम-वासना की तृप्ति के लिए निकाह (विवाह) को अनिवार्य ठहराया है। निकाह की ताकीद के साथ ही उसने ताकीद कर दी है कि हर हाल में स्वच्छंद वासना-तृप्ति (अर्थात् बिना विवाह किए शारीरिक सम्बन्ध बनाने) से दूर रहा जाए और पूरी दृढ़ता के साथ इसपर स्थिर रहा जाए। वह निकाह के अतिरिक्त हर प्रकार की कामेच्छा की पूर्ति को व्यभिचार (ज़िना) घोषित करता है। उसके निकट व्यभिचार हर स्थिति में व्यभिचार है, चाहे ज़बरदस्ती किया जाए या सहमति से। इस्लाम इस सम्बन्ध में व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता देने का पक्षधर नहीं है। आज संसार के विधि-विधानों में व्यभिचार सिरे से कोई अपराध है ही नहीं, यदि कोई चीज़ अपराध है तो वह 'ज़बरदस्ती' या इच्छा के विरुद्ध बल-प्रयोग करके शारीरिक सम्बन्ध बनाना है। अगर यही घिनौना कृत्य परस्पर सहमति से किया जाए तो दुनिया का कोई क़ानून इसपर रोक नहीं लगाता। लेकिन इस्लाम का मामला बिलकुल भिन्न है। वह इस कृत्य को हराम (अवैध) और दण्डनीय अपराध क़रार देता है, चाहे वह सहमति से हो या बलपूर्वक। अतः फ़रमाया –

> ''व्यभिचार (ज़िना) के क़रीब न फटको, वह बहुत बुरा कर्म है और बड़ा ही बुरा रास्ता।''
> – क़ुरआन, 17:32

इस आदेश के सम्बोधित व्यक्ति भी हैं और सामूहिक रूप से समाज भी। व्यक्ति के लिए इस आदेश का अर्थ यह है कि वह मात्र व्यभिचार के कर्म से बचने ही को काफ़ी न समझे, बल्कि ज़िना की भूमिकाओं और उसकी उन आरम्भिक गतिविधियों से भी दूर रहे जो इस मार्ग की ओर ले जाती हैं। अतः एक हदीस में

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया –

> "आँखों का व्यभिचार (पराये को) देखना है, कानों का व्यभिचार (उसकी) बातों को सुनना है, ज़बान का व्यभिचार (उससे) बातचीत है, हाथ का व्यभिचार (उसे) पकड़ना है, पैर का व्यभिचार (उसकी ओर) चलकर जाना है और दिल का व्यभिचार ख़ाहिश और आरज़ुएँ करना है, और शर्मगाह (गुप्तांग) उसकी पुष्टि या अपुष्टि करती है।"
> – हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम

ख़ुदा के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने इस हदीस के द्वारा इस पूरे रास्ते ही को बाधित कर दिया है जिसकी मंज़िल ज़िनाकारी है। एक और हदीस में आप (सल्ल०) ने फ़रमाया –

> "जो कोई अपनी ज़बान और शर्मगाह (गुप्तांग) की हिफ़ाज़त का मुझसे वादा करे, मैं उसके लिए जन्नत की ज़िम्मेदारी लेता हूँ।"
> – हदीस : बुख़ारी

अत: उपर्युक्त आयतों और हदीसों की रौशनी में मुस्लिम समाज की सामूहिक ज़िम्मेदारी हो जाती है कि वह सामूहिक जीवन से व्यभिचार को, इसको बढ़ावा देने और उकसानेवाली चीज़ों को और इसके कारणों को रोके। इस उद्देश्य के लिए क़ानून से, शिक्षा व प्रशिक्षण से, सामूहिक जीवन के सुधार से, सामाजिक जीवन के उचित गठन से और दूसरे प्रभावी उपायों से काम लेकर समाज को इस लानत से मुक्त रखे।

एक युग में जब दुनिया में ज़िनाकारी अर्थात् व्यभिचार इतना आम नहीं हुआ था तो सुज़ाक और उपदंश जैसे रोगों का वर्षों में नाम सुना जाता था। मगर आज स्वच्छन्द काम-तृप्ति और ज़िनाकारी जिस प्रकार प्रगतिशीलता, बौद्धिक स्वतंत्रता और फ़ैशन समझी जा रही है, उसी अनुपात में दुनिया में सेक्स-रोगों की बाढ़ आती चली जा रही है। इसी के परिणामस्वरूप आज संसार में एड्स जैसे घातक रोग ने महामारी का रूप धारण कर लिया है जिसके भय से आज संसार अपनी सारी प्रगति और विकास के बावजूद काँप रहा है और उसके सामने मौत खड़ी नज़र आ रही है।

ईश्वर ने चौदह सौ साल पहले ही ज़िना के मार्ग को 'बुरा रास्ता' यानी

घातक और बरबादी का रास्ता ठहरा दिया था। अगर दुनिया ने ईश्वर की इस हिदायत को तसलीम कर लिया होता तो दुनिया आज तबाही के इस कगार पर न पहुँचती जहाँ उसका अस्तित्व ही ख़तरे में पड़कर रह गया है। ईश्वरीय आदेशों के उल्लंघन का परिणाम तबाही होना ही चाहिए और आज वही हो रहा है।

(6) ज़िना (व्यभिचार) की सज़ाएँ

इस्लामी दण्ड संहिता के मुताबिक़ व्यभिचार एक नैतिक ही नहीं बल्कि ऐसा क़ानूनी अपराध है जिसपर पुलिस हस्तक्षेप कर सकती है और अपराधियों को सज़ा दिलवा सकती है। अत: क़ुरआन मजीद में ज़िना करनेवाले मर्द और ज़िना करनेवाली औरत के लिए सज़ा निर्धारित की गई है –

> ''व्यभिचार करनेवाली औरत और व्यभिचार करनेवाले मर्द दोनों में से हर एक को सौ कोड़े मारो।'' – क़ुरआन, 24:2

(7) बहुविवाह

इस्लाम अपने समाज को व्यभिचार से पाक रखता है। इसी लिए वह व्यभिचार करनेवाले मर्द और ज़िना करनेवाली औरत के लिए इतना कठोर दण्ड निश्चित करता है। स्पष्ट है ऐसे समाज में देहव्यापार करनेवाली औरतों का अस्तित्व सम्भव ही नहीं हो सकता। अलबत्ता इस्लाम ऐसे मर्दों को, जिनकी ज़रूरत एक बीवी से पूरी नहीं होती, इस बात की कुछ अनिवार्य शर्तों के साथ इजाज़त देता है कि वे अपनी आवश्यकता और विशेष परिस्थितियों के अनुसार एक से लेकर चार तक बीवियाँ रख सकते हैं, मगर वह अपने समाज में व्यभिचार को सहन नहीं करता। अत: फ़रमाया गया –

> ''.....जो औरतें तुमको पसन्द हों उनमें से दो-दो, तीन-तीन, चार-चार से निकाह कर लो। लेकिन अगर तुम्हें अन्देशा हो कि उनके साथ न्याय न कर सकोगे तो फिर एक ही बीवी पर बस करो।'' – क़ुरआन, 4:3

इस आयत में अल्लाह तआला ने जहाँ चार बीवियाँ रखने की अनुमति दी है, वहीं उनके बीच न्याय स्थापित करने की पाबन्दी भी लगा दी है ताकि ऐसा न

हो कि एक से ज़्यादा बीवियों की मौजूदगी में शौहर (पति) किसी एक बीवी की ओर इस तरह झुक जाए कि दूसरी अपने आपको परित्यक्ता या अधर में लटकी हुई महसूस करने लगे। अगर किसी व्यक्ति को ऐसा ख़तरा महसूस हो तो फिर उसके लिए बेहतर यही है कि वह सिर्फ़ एक ही बीवी पर सन्तोष करे।

(8) तलाक़

इस्लाम शादी के द्वारा स्थापित सम्बन्ध को क़ैदख़ाना नहीं बनाता, बल्कि वह पति को अनुमति देता है कि अगर वह महसूस करे कि पत्नी के साथ उसका निबाह असम्भव है तो उसे सही राह पर लाने की भरपूर कोशिश करे। इसमें सफलता न मिलने की स्थिति में, जीवन को बोझ और विपत्ति बनाए रखने की तुलना में, इस्लाम इस बात की अनुमति देता है कि पति ऐसी पत्नी को तलाक़ देकर अपने से अलग कर दे ताकि वह अपने लिए कोई दूसरी मुनासिब औरत तलाश कर ले और औरत भी अपने लिए कोई दूसरा पति तलाश कर ले। अत: फ़रमाया गया –

> "तलाक़ दो बार है। फिर या तो सीधी तरह औरत को रोक लिया जाए या भले तरीक़े से उसको विदा कर दिया जाए।" – क़ुरआन, 2:229

अर्थात दो तलाक़ों तक पति को यह अधिकार प्राप्त रहता है कि 'इद्दत' पूरी होने से पहले पत्नी से रुजूअ् (सम्बन्ध स्थापित) कर ले, अर्थात समझौता करके अपने साथ रख ले। अगर 'इद्दत' गुज़र जाती है तो फिर से निकाह किया जा सकता है, मगर तीसरी तलाक़ के बाद इसकी सम्भावना नहीं रहती। फिर से निकाह उसी औरत से तभी सम्भव है जब वह औरत अपनी मरज़ी से कहीं और शादी कर ले और संयोगवश वहाँ से भी उसको तलाक़ हो जाए या विधवा हो जाए। अत: फ़रमाया गया –

> "फिर अगर (दो बार तलाक़ देने के बाद पति ने पत्नी को तीसरी बार) तलाक़ दे दी तो वह औरत फिर उसके लिए हलाल न होगी, सिवाय इसके कि उसका निकाह किसी दूसरे व्यक्ति से हो और वह उसे तलाक़ दे दे। तब अगर पहला

पति और यह औरत दोनों यह ख़याल करें कि अल्लाह की सीमा का पालन करेंगे तो उनके लिए एक-दूसरे की तरफ़ रुजूअ् कर लेने में कोई हरज नहीं।''

— क़ुरआन, 2:230

(9) ख़ुलअ्

इस्लाम ने न सिर्फ़ नापसन्दीदा औरत से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने का तलाक़ के द्वारा मर्द को अधिकार दिया है, बल्कि वह समान रूप से औरत को भी हक़ देता है कि वह भी अगर चाहे तो नापसन्दीदा पति से छुटकारा पाने के लिए ख़ुलअ् हासिल कर सकती है। लेकिन ख़ुलअ् हासिल करने के लिए पति की स्वीकृति आवश्यक है, चाहे उसके लिए औरत को कोई क़ीमत ही क्यों न अदा करनी पड़े। इस्लामी धर्म-चिन्तकों और विधिवेत्ताओं के मतानुसार यह रक़म 'महर्' की रक़म से ज़्यादा न होनी चाहिए। अत: फ़रमाया गया –

''अगर तुम्हें यह भय हो कि दोनों अल्लाह की क़ायम की हुई हदों (मर्यादाओं) पर क़ायम न रहेंगे तो उन दोनों के बीच यह मामला हो जाने में कोई आपत्ति नहीं कि औरत अपने पति को कुछ देकर उससे छुटकारा पा ले।''

– क़ुरआन, 2:229

इस्लामी अदालत अगर पत्नी की 'ख़ुलअ्' की माँग को तर्कसंगत पाए तो, पति की स्वीकृति न होने पर भी, दोनों में सम्बन्ध-विच्छेद करके पत्नी को आज़ाद कर सकती है, अर्थात 'ख़ुलअ्' को स्थापित कर सकती है।

(10) इद्दत

तलाक़ पाई हुई और ख़ुलअ् प्राप्त दोनों प्रकार की औरतों के लिए इद्दत (अर्थात् एक निश्चित अवधि) तक अपने-आपको शादी से रोके रखना अनिवार्य है। अत: क़ुरआन मजीद में इस सम्बन्ध में यह हिदायत दी गई है –

''जिन औरतों को तलाक़ दी गई हो वे तीन बार रजस्राव (मासिक धर्म) आने तक अपने आपको रोके रखें और उनके लिए यह वैध नहीं है कि अल्लाह ने उनके गर्भ में जो कुछ निर्मित किया हो उसे छिपाएँ। उन्हें हरगिज़ ऐसा न करना

चाहिए अगर वे अल्लाह और अन्तिम दिन (क़ियामत) पर ईमान रखती हैं।''
— क़ुरआन, 2:228

तलाक़ पाई हुई औरतों ही की तरह ख़ुलअ पानेवाली औरतों की भी इद्दत की हद मुक़र्रर की गई है। अलबत्ता विधवा के लिए इद्दत की अवधि में थोड़ा अन्तर रखा गया है। अत: इस सम्बन्ध में फ़रमाया गया —

''तुममें से जो लोग मर जाएँ, उनके पीछे अगर उनकी बीवियाँ ज़िन्दा हों तो वे बीवियाँ अपने आपको चार महीने दस दिन तक रोके रखें। फिर जब उनकी इद्दत पूरी हो जाए तो उन्हें अधिकार है कि सामान्य नियम के मुताबिक़ वे अपने लिए जो चाहें करें। (अर्थात् शादी करें या न करें) उसमें तुमपर कोई गुनाह नहीं। अल्लाह तुम सबके कर्मों की ख़बर रखता है।'' — क़ुरआन, 2:234

विधवाओं के लिए इद्दत की अवधि के अन्तर्गत वे औरतें भी आती हैं जिनका अपने पति के साथ समागम न हुआ हो, अलबत्ता गर्भवती महिला उससे अलग है। उसकी इद्दत बच्चा पैदा होने तक है, चाहे बच्चे का जन्म पति के मरने के तुरन्त बाद ही हो जाए या उसमें कई महीने लग जाएँ। इस आयत में 'अपने आपको रोके रखें' का तात्पर्य सिर्फ़ यही नहीं है कि वे इस अवधि में निकाह न करें, बल्कि उससे अभिप्रेत अपने आपको साज-श्रृंगार से भी रोके रखना है। अत: हदीसों में आदेश मिलते हैं कि इद्दत की अवधि में औरत को रंगीन तड़क-भड़कवाले कपड़े और ज़ेवर पहनने से, मेंहदी, सुर्मा, ख़ुशबू और ख़िज़ाब लगाने और बालों के प्रसाधन से परहेज़ करना चाहिए।

(11) पूर्व-पति से पुनर्विवाह

नापसन्दीदा बीवी को जिसके साथ जीवन-यापन करना अत्यन्त कठिन हो जाए तो उसे तलाक़ के द्वारा अपने से अलग कर देने का प्रावधान इस्लाम में है। इस सम्बन्ध में अल्लाह तआला ने यह तरीक़ा भी निश्चित किया है कि औरत को तीन 'तुह्‌र' (मासिक धर्म के बाद की पवित्र स्थिति) में एक-एक तलाक़ दी जाए। अतएव पति को हक़ है कि पहली तलाक़ पर पत्नी से सम्बन्ध पुन:

स्थापित कर सकता है। दूसरी तलाक़ पर फिर से निकाह करना ज़रूरी होता है, मगर तीसरी तलाक़ के बाद उस औरत से निकाह नहीं हो सकता। यह और बात है कि उस औरत का निकाह किसी दूसरे मर्द से हो गया हो और उस मर्द की या तो मृत्यु हो गई हो या उसने उसे तलाक़ दे दी हो। ऐसी स्थिति में दोनों की रज़ामन्दी से निकाह हो सकता है। इन पाबन्दियों में हिक्मत यह है कि मर्द अपने इस अधिकार का प्रयोग सोच-समझकर सावधानी के साथ करे।

इसके विपरीत 'ख़ुलअ्' बीवी (पत्नी) की ओर से माँगा जाता है और पति की सहमति और स्वीकृति से यह कार्य सम्पन्न होता है। इसलिए 'ख़ुलअ्' प्राप्त जोड़ा बाद में अगर राज़ी हो जाए तो हलाला के बिना उन दोनों का निकाह हो सकता है और वे दोनों फिर से नए हौसले के साथ नए जीवन की शुरुआत कर सकते हैं।

इस स्पष्टीकरण से मालूम होता है कि तलाक़ के मामले में ईश्वर ने सहूलतें देने के साथ-साथ जितनी सख़्ती बरती है, ख़ुलअ् के मामले में उतनी ही सहूलतें दी गई हैं। ज़रूरत इस बात की है कि जहाँ तलाक़ की नौबत आ ही जाए वहाँ ख़ुलअ् की ओर उसका रुख़ मोड़ देना चाहिए, ताकि बाद में पछताने की नौबत न आए।

(12) पुनर्विवाह

इस्लाम अपने समाज को व्यभिचार से बचाए रखने के लिए और अपने माननेवालों की यौन-आवश्यकताओं की जाइज़ पूर्ति की राहें निकालने और बाक़ी रखने के लिए औरत और मर्द दोनों को हिदायत देता है कि वे शादी कर लें ताकि वैध रूप से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो और उनकी निगाह, दिल, चरित्र और नीयत में पवित्रता बाक़ी रहे और समाज में बौद्धिक, मानसिक और विचारधारात्मक अराजकता उत्पन्न न हो सके। इस उद्देश्य के लिए वह विधवा, तलाक़शुदा और ख़ुलअ् पानेवाली औरतों को भी प्रोत्साहित करता है कि वे भी इद्दत की अवधि समाप्त होने के बाद अपने लिए दूसरे पति का चयन करके उनसे

शादियाँ कर लें और पारिवारिक जीवन से लाभ उठाएँ। वह ऐसी औरतों के परिवार के लोगों को भी ताकीद करता है कि वे उन औरतों के पुनर्विवाह की चिन्ता करें और समाज पर भी ज़िम्मेदारी डालता है कि वह ऐसी औरतों के लिए योग्य पति तलाश करने में उनकी सहायता करे। इसी के साथ विधवा होने, तलाक़ पाने या ख़ुलअ कराने की स्थिति में वह ससुरालवालों का कोई अधिकार स्वीकार नहीं करता। उनके लिए ये औरतें अजनबी के दायरे में आ जाती हैं। इसलिए उन लोगों को इससे रोकता है कि उन्हें पुनर्विवाह से वंचित करने के लिए दबाव डालें या फिर अपने किसी पसन्दीदा व्यक्ति से उसको निकाह करने पर मजबूर करें। अतः इस सिलसिले में क़ुरआन मजीद हुक्म देता है –

> "जब तुम अपनी औरतों को तलाक़ दे दो और वे अपनी इद्दत पूरी कर लें तो फिर तुम इसमें रुकावट न बनो कि वे अपनी पसन्द के पतियों से निकाह कर लें, जबकि वे प्रचलित रीति से परस्पर निकाह कर लेने पर राज़ी हों। तुम्हें नसीहत की जाती है कि ऐसी हरकत हरगिज़ न करना अगर तुम अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान लानेवाले हो। तुम्हारे लिए उचित और पवित्र तरीक़ा यही है कि इससे बाज़ रहो। अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते।" – क़ुरआन, 2:232

(13) नफ़क़ा (भरण-पोषण)

उपर्युक्त आयतों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अल्लाह तआला तलाक़ पाई हुई औरत को इद्दत गुज़र जाने के बाद आज़ाद कर देता है कि वह चाहे तो अपने आगामी जीवन के लिए किसी भी मुनासिब व्यक्ति से विवाह कर ले और नए सिरे से पारिवारिक जीवन की शुरुआत करे। नए पति के चयन में वह पूर्व-पति या उसके परिवार के सदस्यों को हस्तक्षेप करने की इजाज़त नहीं देता। अतएव वह पूर्व पति से किसी भी प्रकार का सामाजिक और आर्थिक सम्बन्ध भी बाक़ी नहीं रहने देता। इसलिए वह इद्दत की अवधि में खाने और रहने के ख़र्च की ज़िम्मेदारी तो पूर्व पति पर डालता है, लेकिन इद्दत पूरी होने के बाद पूर्व पति पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं डालता और न पूर्व पति का उस स्त्री पर कोई अधिकार शेष रखता। अतः तलाक़ पानेवाली औरतों के बारे में हुक्म है –

"उनको (तलाक़ पानेवाली औरतों को इद्दत की अवधि में) उसी जगह रखो जहाँ तुम रहते हो, जैसी कुछ भी जगह तुम्हें प्राप्त हो और उन्हें तंग करने के लिए उनको न सताओ। और अगर वे गर्भवती हों तो उनपर उस समय तक ख़र्च करते रहो जब तक उनका बच्चा पैदा न हो जाए।" — क़ुरआन, 65:6

क़ुरआन मजीद की इस आयत से तलाक़ पाई हुई औरतों को इद्दत की अवधि में पूर्व-पति के मकान में ही रखने और तंग न किए जाने का हुक्म दिया गया है। इसलिए मुस्लिम समुदाय के फ़ुक़हा (धार्मिक विधिवेत्ताओं) की राय है कि इद्दत की अवधि में खाने-पीने और रहने-सहने की ज़िम्मेदारी पूर्व-पति के ऊपर आती हैं। तलाक़ पाई हुई औरत गर्भवती हो या न हो, इद्दत के लिए पूर्वपति के बच्चे के जन्म या उसके गर्भधारण की जाँच के लिए रोकी जाती हैं। और इसी लिए उनकी ज़िम्मेदारी भी पूर्व पतियों पर डाली गई है। इद्दत की अवधि गुज़र जाने के बाद चूँकि औरत आज़ाद हो जाती है, इसलिए अब वह पूर्व पति के लिए अजनबी हो जाती है जिससे उसे परदा करना होता है। इस कारण इद्दत समाप्त हो जाने के बाद पूर्व पति से न उसका कोई सम्बन्ध शेष रहता है और न ही उसपर कोई ज़िम्मेदारी लागू होती है।

पति की हैसियत से पत्नी पर 'अधिकार' पूर्ण रूप से समाप्त हो जाने पर, तर्कसंगत रूप से, इस्लाम पति की हैसियत से उसके 'कर्त्तव्यों' की भी समाप्ति कर देता है, यही इनसाफ़ का तक़ाज़ा भी है।

(14) ईला

कभी पति अपनी पत्नी से दाम्पत्य सम्बन्ध क़ायम न रखने की क़सम खा ले या संकल्प कर ले तो इस्लामी धर्मविधान की परिभाषा में इसे 'ईला' कहते हैं। ख़ुदा की शरीअत इसको पसन्द नहीं करती कि दोनों एक-दूसरे के साथ क़ानूनी रिश्ता तो रखें मगर व्यावहारिक रूप से एक-दूसरे से अलग-थलग रहें। ईश्वर इस हालत के लिए चार माह की मुद्दत मुक़र्रर करता है। उसके बाद या तो दोनों में समझौता हो जाना चाहिए या दोनों में तलाक़ के द्वारा पूर्णरूपेण अलगाव।

> "जो लोग अपनी औरतों से सम्बन्ध न रखने की क़सम खा बैठते हैं उनके लिए चार महीने की मुहलत है। फिर यदि वे पलट आएँ (रुजूअ् कर लें) तो अल्लाह क्षमाशील और दयावान है।" — क़ुरआन, 2:226

इन चार माह के अन्दर ही पति को रुजूअ् करने का हक़ हासिल रहता है। इस अवधि के गुज़र जाने के बाद औरत पर ख़ुद-बख़ुद एक तलाक़ लागू हो जाती है। इसके बाद अगर पति पत्नी को रखना चाहता है तो इद्दत की अवधि में वह रुजूअ् कर सकता है। कुछ दूसरे फ़ुक़हा (इस्लामी क़ानून के विशेषज्ञों) के निकट पति फिर से निकाह करके ही उस औरत को अपनी पत्नी बना सकता है।

(15) ज़िहार

घरेलू जीवन में कभी-कभार पति-पत्नी में झगड़ा भी हो जाया करता है। ऐसे अवसरों पर कभी पति अपनी पत्नी से कह देता है कि "तू मेरे लिए ऐसी है जैसी मेरी माँ की पीठ।" इसके बाद पति अपनी पत्नी से दूर रहता है और यौन-सम्बन्ध व दाम्पत्य-सम्बन्ध ख़त्म कर देता है। पति के इसी व्यवहार को शरीअत में 'ज़िहार' का नाम दिया गया है। इसका मतलब यह होता है कि अब पति अपनी पत्नी को अपने ऊपर माँ की तरह अपने लिए हराम समझता है। अरबवासियों में इस तरह का रिवाज था और इतनी सख़्ती से इसका पालन किया जाता था कि तलाक़ पानेवाली से तो रुजूअ् सम्भव था, मगर ऐसी (ज़िहारवाली) पत्नी से रुजूअ् नहीं हो सकता था। ख़ुदा ने इस सिलसिले में आदेश अवतरित किया और बताया कि किसी स्त्री को माँ या माँ की तरह कह देने से वह माँ नहीं बन जाती। माँ तो वही होती है जिसने बच्चे को जन्म दिया है। दूसरे यह कि ज़िहार से निकाह नहीं टूटता, बल्कि पत्नी, पत्नी ही रहती है। तीसरे यह कि जो व्यक्ति अपनी ज़बान से ऐसी बेहूदा और अनर्गल बात निकालता है उसे अपनी पत्नी को हाथ लगाने से पहले 'कफ़्फ़ारा' (प्रायश्चित-दण्ड) अदा करना पड़ेगा। और ज़िहार का कफ़्फ़ारा यह है कि वह एक ग़ुलाम को आज़ाद करे। अगर ऐसा न कर सके तो दो माह तक लगातार रोज़े रखे और अगर इसकी क्षमता भी न हो तो फिर वह साठ मिस्कीनों अर्थात ग़रीबों या बेसहारा-अनाथों को खाना खिलाए। इसके

बाद ही वह पत्नी को हाथ लगा सकेगा। इस सम्बन्ध में सूरा 'मुजादला' में अल्लाह तआला ने यह हुक्म दिया है –

> ''जो लोग अपनी पत्नियों से ज़िहार करें फिर अपनी इस बात से रुजूअ् करें जो उन्होंने कही थी तो इससे पहले कि दोनों एक-दूसरे को हाथ लगाएँ, एक ग़ुलाम आज़ाद करना होगा। इससे तुमको नसीहत की जाती है, और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उससे बाख़बर है। और जो व्यक्ति ग़ुलाम न आज़ाद कर पाए, वह दो महीने लगातार रोज़े रखे, इससे पहले कि दोनों एक-दूसरे को हाथ लगाएँ। और जो इसका भी सामर्थ्य न रखता हो तो वह साठ मुहताजों को खाना खिलाए।''
>
> – क़ुरआन, 58:3-4

(16) क़ज़फ़

अगर कोई व्यक्ति पाकदामन और शीलवान पत्नी पर व्यभिचार का इलज़ाम लगाता है तो इलज़ाम लगानेवाले के लिए ज़रूरी है कि वह चार चश्मदीद गवाह पेश करे, और अगर वह ऐसे गवाह न ला सके तो हुक्म दिया गया है कि इलज़ाम लगानेवाले को अस्सी कोड़ों की सज़ा दी जाए। इस लांछन को शरीअत में 'क़ज़फ़' का नाम दिया गया है। अतः फ़रमाया –

> ''...जो लोग पाकदामन औरतों पर तोहमत लगाएँ फिर चार गवाह लेकर न आएँ, उनको अस्सी कोड़े मारो और उनकी गवाही कभी क़बूल न करो।''
>
> – क़ुरआन, 24:4

क़ज़फ़ की सज़ा के ज़रिए अल्लाह तआला ने मुस्लिम समाज में व्यभिचार (ज़िना) को अफ़वाहों का दिलचस्प विषय बनाए जाने पर पाबन्दी लगा दी। इस बात को सख़्ती से रोक दिया कि लोग दूसरों की टोह में लगे रहें और मज़े ले-लेकर झूठी-सच्ची घटनाएँ सुनाते फिरें। हद तो यह है कि इस्लाम पति को भी इस बात की इजाज़त नहीं देता कि वह अपनी पत्नी के बारे में भी इस तरह की कोई बात कहे, वरना उसे भी चार गवाह पेश करने पड़ेंगे। गवाही के अभाव में उसको भी क़ज़फ़ की सज़ा (अस्सी कोड़े) दी जाएगी।

(17) लिआन

लिआन बदकारी (व्यभिचार) के ऐसे इलज़ाम का हल है जो किसी पति ने अपनी पत्नी पर लगाया हो और उसके पास चार प्रत्यक्षदर्शी गवाह मौजूद न हों। ऐसे मुक़द्दमों को लिआन के द्वारा हल किया जा सकता है। अत: फ़रमाया –

> "...जो लोग अपनी पत्नियों पर इलज़ाम लगाएँ और उनके पास ख़ुद उनके अपने सिवा दूसरे कोई गवाह न हों तो उनमें से एक व्यक्ति की गवाही (यह है कि वह) चार बार अल्लाह की क़सम खाकर गवाही दे कि वह (अपने इलज़ाम में) सच्चा है और पाँचवीं बार कहे कि उसपर अल्लाह की लानत हो अगर वह (अपने इलज़ाम में) झूठा हो। और औरत से सज़ा इस तरह टल सकती है कि वह चार बार अल्लाह की क़सम खाकर गवाही दे कि यह व्यक्ति (अपने इलज़ाम में) झूठा है और पाँचवी बार कहे कि इस बन्दी (दासी) पर अल्लाह का ग़ज़ब टूटे अगर वह (मर्द अपने इलज़ाम में) सच्चा हो।" – क़ुरआन, 24:6-9

इस तरह अल्लाह तआला ने एक अहम गुत्थी को सुलझाने में रहनुमाई फ़रमा दी है। अलबत्ता 'लिआन' क़ाज़ी (न्यायाधीश) की मौजूदगी ही में सम्भव होगा। इसके बाद क़ाज़ी दोनों को अलग करा देगा और उसके बाद दोनों जीवन भर के लिए एक-दूसरे पर हराम हो जाएँगे। ऐसी स्थिति में औरत को खाना-ख़र्च और रहने के लिए घर की सुविधा पाने का हक़ भी नहीं रहेगा। इसलिए कि यह हक़ तलाक़ पाने या विधवा हो जाने की स्थिति ही में हासिल होता है। अलबत्ता अगर पति 'लिआन' से कतराता है तो उसपर 'क़ज़फ़' की सज़ा लागू की जाएगी यानी उसे अस्सी कोड़ों की सज़ा दी जाएगी। लेकिन अगर औरत लिआन से कतराती है तो उसपर ज़िना की सज़ा लागू नहीं हो सकेगी, क्योंकि ज़िना के सुबूत के लिए चार चश्मदीद गवाहों का होना आवश्यक क़रार दिया गया है और अगर पति को ये चार गवाह उपलब्ध हो जाएँ तो फिर लिआन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

(18) शहादत (गवाही)

शहादत के इस्लामी क़ानून के मुताबिक़ औरत की गवाही मर्द के मुक़ाबले में आधी क़रार दी गई है। वर्तमान में कुछ लोगों की ओर से इसपर बड़ी आपत्ति की जाती

है, लेकिन अगर इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था को सामने रखकर देखा जाए तो वास्तव में यह सिद्धान्त उसके समानुकूल है। इस्लाम औरत के लिए उसका कार्यक्षेत्र घर को प्रस्तावित करता है। उसकी सारी दिलचस्पियों का केन्द्र घर की निगरानी और बच्चों की परवरिश है। घर से बाहर की दुनिया से दिलचस्पी रखना उसके कार्य-क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, इसलिए ज़रूरी नहीं है कि वह घर से बाहर होनेवाली घटनाओं की बारीकियों में भी उसी तरह दिलचस्पी ले जिस तरह घर के मामलों में लेती है। फिर यह औरत को अदालतों का चक्कर लगाने से सुरक्षित रखने में भी सहायक सिद्ध होता है। अत: फ़रमाया –

> ''फिर अपने मर्दों में से दो आदमियों की उसपर गवाही करा लो। और अगर दो मर्द न हों तो एक मर्द और दो औरतें हों, ताकि एक भूल जाए तो दूसरी उसे याद दिला दे।''
>
> – क़ुरआन, 2:282

(19) विरासत

(क) आम लोगों की विरासत

जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो प्राय: वह कुछ न कुछ जायदाद दुनिया में छोड़कर जाता है। उसकी मौत के बाद जायदाद के बँटवारे में प्राय: मतभेद पैदा हो जाता है और नौबत झगड़े-फ़साद तक पहुँच जाती है। अल्लाह तआला ने मुस्लिम-समाज को दुश्मनी और कटुता के इस माहौल से बचाने के लिए स्थायी क़ानून निर्धारित कर दिए हैं। इसमें उन लोगों को निश्चित भी कर दिया गया है जिनको वारिसों (विरासत पानेवालों) में गिना जाता है, और इसका भी निर्धारण कर दिया कि उनमें से किसका कितना हिस्सा विरासत में होगा। अत: फ़रमाया गया –

> ''तुम्हारी औलाद के बारे में अल्लाह तुम्हें हिदायत करता है : मर्द का हिस्सा दो औरतों के बराबर है। अगर (मृतक की वारिस) दो से ज़्यादा लड़कियाँ हों तो उन्हें विरासत की सम्पत्ति का दो-तिहाई दिया जाए। और अगर एक ही लड़की वारिस हो तो आधा भाग विरासत का उसका है। अगर मृतक सन्तानवाला हो तो उसके माता-पिता में से हर एक को विरासत का छठा भाग मिलना चाहिए। और यदि वह नि:सन्तान हो और माँ-बाप ही उसके वारिस हों तो माँ को तीसरा भाग दिया जाए, और अगर मृतक के भाई-बहन भी हों तो माँ छठे भाग की हक़दार

होगी। ये सब हिस्से उस समय निकाले जाएँगे जबकि वसीयत जो मृतक ने की हो पूरी कर दी जाए और क़र्ज़ जो उसपर हो अदा कर दिया जाए। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे माँ-बाप और तुम्हारी औलाद में से कौन लाभ की दृष्टि से तुमसे निकटतम है। ये हिस्से अल्लाह ने निर्धारित कर दिए हैं और अल्लाह निश्चय ही सब हक़ीक़तों से वाक़िफ़ और सारी मस्लहतों का जाननेवाला है।

और तुम्हारी पत्नियों ने जो कुछ छोड़ा हो उसका आधा भाग तुम्हें मिलेगा अगर वे निःसन्तान हैं, वरना सन्तान के रहने की स्थिति में विरासत का एक चौथाई हिस्सा तुम्हारा है जबकि वसीयत जो उन्होंने की हो पूरी कर दी जाए और क़र्ज़ जो उन्होंने छोड़ा हो अदा कर दिया जाए। और वह (पत्नी) तुम्हारी छोड़ी हुई सम्पत्ति में से चौथाई की हक़दार होगी अगर तुम निःसन्तान हो, वरना संन्तान रहने की स्थिति में उनका हिस्सा आठवाँ होगा, इसके बाद कि जो वसीयत तुमने की हो वह पूरी कर दी जाए और जो क़र्ज़ तुमने छोड़ा हो वह अदा कर दिया जाए। और अगर वह मर्द या औरत (जिसकी मीरास का बँटवारा होना है) निःसन्तान भी हो और उसके माँ-बाप जीवित न हों मगर उसका एक भाई या एक बहन मौजूद हो तो भाई और बहन हर एक को छठा भाग मिलेगा। और भाई-बहन एक से ज़्यादा हों तो कुल विरासत के एक-तिहाई में वे सब सम्मिलित होंगे, जबकि वसीयत जो की गई है पूरी कर दी जाए और क़र्ज़ जो मृतक ने छोड़ा हो अदा कर दिया जाए, इस शर्त के साथ कि वह हानिकारक न हो। यह हुक्म है अल्लाह की ओर से, और अल्लाह जानता, देखता और सहनशील है।''

— क़ुरआन, 4:11,12

(ख) 'कलाला' की विरासत

शरीअत की पारिभाषिक शब्दावली में 'कलाला' उस व्यक्ति को कहते हैं जो निःसन्तान हो और जिसके बाप और दादा भी जीवित न हों। ऐसे व्यक्ति की मौत पर उसकी जायदाद का बँटवारा किस तरह किया जाएगा, अल्लाह तआला ने उसका तरीक़ा भी मुक़र्रर कर दिया है। अतः फ़रमाया –

''अगर कोई व्यक्ति निःसन्तान मर जाए और उसकी एक बहन हो तो वह उसकी छोड़ी हुई सम्पत्ति में से आधा हिस्सा पाएगी और अगर बहन निःसन्तान मरे तो भाई उसका वारिस होगा। अगर मृतक की वारिस दो बहनें हों तो वह जायदाद में से दो-तिहाई की हक़दार होंगी और अगर कई भाई-बहनें हों तो औरतों का

इकहरा और मर्दों का दोहरा हिस्सा होगा। अल्लाह तुम्हारे लिए आदेशों को स्पष्ट करता है ताकि तुम भटकते न फिरो, और अल्लाह हर चीज़ का पूरा ज्ञान रखता है।''

– क़ुरआन, 4:176

इन आयतों के द्वारा अल्लाह तआला ने विरासत के बँटवारे का विस्तृत नियम निर्धारित कर दिया है। जगह-जगह, हर परिस्थिति में नारी का विरासत में हक़ निर्धारित कर दिया है और इसको अपनाने की सख़्ती से ताकीदी हिदायत फ़रमाई है। साथ ही इस नियम का उल्लंघन करनेवालों को जहन्नम की धमकी भी दी गई है। इसलिए हर मुसलमान का फ़र्ज़ है कि वह इस नियम का पालन करे और ईश-प्रकोप को आमंत्रित न करे। साथ ही साथ इस अमल से ग़ैर-मुस्लिम समाज के सामने, विशेषत: नारी के प्रति, इस्लाम व मुस्लिम समाज की न्यायप्रियता व सहिष्णुता का ठोस प्रमाण भी देता रहे।

(20) वसीयत

अल्लाह तआला ने मरनेवाले को इस बात की इजाज़त दी है कि वह मरने से पहले वसीयत कर जाए। अत: फ़रमाया गया –

''तुमपर फ़र्ज़ किया गया है कि जब तुममें से किसी की मौत का समय आए और वह अपने पीछे माल छोड़ रहा हो तो माँ-बाप और संबन्धियों के लिए प्रचलित रीति से वसीयत करे। यह हक़ है मुत्तक़ी (परहेज़गार) लोगों पर।''

– क़ुरआन, 2:180

वसीयत से सम्बन्धित यह आयत उस समय अवतरित हुई थी जबकि अभी विरासत के बँटवारे का विस्तृत नियम अवतरित नहीं हुआ था। बाद में जब यह नियम अवतरित हो गया तो यह सिद्धान्त लागू कर दिया गया कि जिन लोगों को वारिस मुक़र्रर कर दिया गया है और उनका जो हिस्सा तय कर दिया गया है उसके सम्बन्ध में कोई वसीयत नहीं की जा सकती। न तो उनमें से किसी को वंचित किया जा सकता है और न उनमें से किसी के हिस्से में कोई परिवर्तन किया जा सकता है। अलबत्ता उन लोगों के लिए वसीयत की जा सकती है जो इस हुक्म में शामिल नहीं हैं, मगर यह वसीयत भी ज़्यादा से ज़्यादा जायदाद के एक-तिहाई

हिस्से के बारे में हो सकती है।

हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) ने फ़रमाया –

> "काश! वसीयत के मामले में लोग चौथाई माल तक जाते क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने तिहाई तक की इजाज़त दी लेकिन तिहाई को 'कसीर या कबीर' (बहुत अधिक या बहुत बड़ा) बताया है।" – हदीस : बुख़ारी

(21) लेपालक अर्थात् दत्तक पुत्र (तबनीयत)

कुछ लोग जो सन्तान से महरूम होते हैं वे दूसरे किसी प्रियजन के बच्चे को गोद ले लेते हैं या फिर किसी ग़रीब रिश्तेदार के बच्चे को परवरिश करने और तालीम व तरबियत देने के लिए गोद ले लेते हैं और उन बच्चों के वही अधिकार स्वीकार कर लिए जाते हैं जो औरस पुत्र (अपनी सन्तान) के होते हैं। लेकिन अल्लाह तआला के निकट यह बात भी पसन्दीदा नहीं कि कोई बाप अपनी औलाद का पिता होने से इनकार करे और यह बात भी कि कोई बच्चा अपने बाप के अतिरिक्त किसी और की औलाद ठहराया जाए। अल्लाह तआला इस प्रकार के काल्पनिक सम्बन्धों को पसन्द नहीं करता। इसलिए वह लेपालक (दत्तक पुत्र) को पराया ही ठहराता है, सगी सन्तान नहीं। और उसको वह अधिकार भी नहीं देता जो सगी सन्तान के लिए निश्चित किए गए हैं। अत: फ़रमाया –

> "...न उसने तुम्हारे मुँहबोले बेटों को तुम्हारा असली बेटा बनाया है। ये तो वे बातें हैं जो तुम लोग मुँह से निकाल देते हो।" – क़ुरआन, 33:4

इस आयत से मालूम हुआ कि किसी बच्चे को बेटा कह देने से वह बेटा नहीं बन जाता। आम तौर से लोग किसी बच्चे को गोद इसलिए लेते हैं कि मरने के बाद वह उनकी जायदाद का वारिस ठहरे। लेकिन अल्लाह तआला इसको पसन्द नहीं करता। इसी लिए वारिसों में विरासत के बँटवारे की जो व्यवस्था निर्धारित की गई है उसमें लेपालक (दत्तक पुत्र) के लिए कोई अधिकार निश्चित नहीं है, अलबत्ता मृतक को अपनी जायदाद के ज़्यादा से ज़्यादा एक-तिहाई भाग की वसीयत करने का जो अधिकार दिया गया है उसमें वह वारिसों के अलावा किसी

भी व्यक्ति के लिए वसीयत कर सकता है। इसमें जहाँ उसके दूर के प्रियजन और दोस्त व साथी को शरीक किया जा सकता है वहीं अपने यतीम पोते और पोती और लेपालक को भी शामिल किया जा सकता है। लेकिन यह वसीयत में शामिल करना उसकी लेपालक की हैसियत से नहीं, बल्कि उसकी आवश्यकता के आधार पर होगा।

इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई व्यक्ति अपने किसी प्रियजन के बच्चे की परवरिश नहीं कर सकता। किसी प्रियजन के बच्चे की परवरिश करना और उसकी तालीम व तरबियत की व्यवस्था करके उसे अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य बनाना बड़ी नेकी का काम है। इस्लाम इसकी ओर प्रेरित करता है और उत्साह भी बढ़ाता है, मगर उसे वास्तविक बेटा स्वीकार नहीं करता। एक व्यक्ति अपने जीवन में किसी बच्चे को जो चाहे दे सकता है, मगर उसके मरने के बाद वह वारिस नहीं ठहराया जा सकता।

लेपालक को अपने असली अर्थात् सगे बेटे से अलग ठहराने के लिए अल्लाह तआला ने जहाँ महरम औरतों का वर्णन किया है, जिनसे किसी सूरत में शादी नहीं की जा सकती, वहाँ एक वाक्य यह भी है –

"...तुम्हारे उन बेटों की पत्नियाँ जो तुम्हारे वीर्य से हों।" – क़ुरआन, 4:23

इस आयत में 'तुम्हारे वीर्य से हों' कहकर बता दिया कि दत्तक पुत्र जिन्हें तुम अपना पुत्र समझते हो, अगर वे अपनी पत्नी को तलाक़ दे दें तो उनकी पत्नियों से निकाह किया जा सकता है, मगर अपने वीर्य से उत्पन्न बेटे की तलाक़ दी हुई पत्नी पूरी तरह हराम है, उनसे पिता निकाह नहीं कर सकता।

अरब के अज्ञानकाल (इस्लाम से पूर्व के काल) में लेपालक को भी वास्तविक बेटे के अधिकार प्राप्त थे, इसलिए अल्लाह तआला ने अपने नबी के द्वारा इस ग़लत रस्म को समाप्त करवा दिया। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के एक आज़ाद किए हुए ग़ुलाम हज़रत ज़ैद (रज़ि०) थे जो हारिसा (रज़ि०) के असली बेटे थे। नबी (सल्ल०) ने उन्हें अपना बेटा बना लिया था और वह ज़ैद बिन मुहम्मद

अर्थात् मुहम्मद (सल्ल०) के बेटे कहलाते थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने आपकी शादी क़ुरैश ख़ानदान के एक प्रतिष्ठित घराने की लड़की हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से करवा दी। लेकिन जब उन दोनों के बीच कटुता बढ़ी और हज़रत ज़ैद ने हज़रत ज़ैनब को तलाक़ दे दी तो अल्लाह तआला ने हुक्म दिया –

> "फिर जब ज़ैद ने उससे अपना रिश्ता काट लिया तो हमने उस (तलाक़ पाई हुई औरत) का तुमसे निकाह कर दिया ताकि मोमिनों पर अपने मुँहबोले बेटों की पत्नियों के मामले में कोई तंगी न रहे, जबकि वे उनसे अपना सम्बन्ध बिलकुल काट लें। और अल्लाह का हुक्म तो अमल में आना ही चाहिए था।"
>
> – क़ुरआन, 33:37

इन आदेशों के द्वारा अल्लाह तआला ने मुँहबोले बेटे और वास्तविक बेटों के बीच स्पष्ट अन्तर क़ायम कर दिया है, ताकि भविष्य में भी कोई व्यक्ति इस मामले में धोखे में न रहे।

सिफ़ारिश नहीं, आदेश

इस्लाम की 'पारिवारिक व्यवस्था' अर्थात् 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' से सम्बन्धित जिन आदेशों एवं नियमों का विवरण प्रस्तुत किया गया है वे न तो महज़ सिफ़ारिशें हैं और न सिर्फ़ मशविरे, बल्कि यह विश्व-सम्राट की ओर से अपने बन्दों के लिए वह वैधानिक व्यवस्था है जिसके मुताबिक़ वह मुस्लिम समाज को सुगठित देखना चाहता है। और चूँकि ये अल्लाह तआला द्वारा अवतरित क़ानून हैं, इसलिए उनको जीवन में धारण करना इबादत के दायरे में शामिल हो जाता है जिससे अल्लाह के बन्दे सवाब (पुण्य) और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के अधिकारी ठहरते हैं।

इसी लिए इन आदेशों को बयान करने के बाद कहीं उन्हें 'हुदूदे-इलाही' (अल्लाह की निर्धारित सीमाएँ) क़रार दिया गया है और उनके क़रीब जाने से भी रोका गया है, तो कहीं उनकी पाबन्दी करनेवालों को जन्नत की ख़ुशख़बरी सुनाई गई है और उल्लंघन करने की स्थिति में जहन्नम (नरक) की धमकी दी गई है।

साथ ही यह मौलिक सिद्धान्त निर्धारित कर दिया गया है –

> "किसी मोमिन मर्द और किसी मोमिन औरत को यह हक़ नहीं है कि जब अल्लाह और उसका रसूल किसी मामले में फ़ैसला कर दें तो फिर उसे अपने उस मामले में ख़ुद फ़ैसला करने का अधिकार हासिल रहे। और जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी करे तो वह खुली गुमराही में पड़ गया।"
>
> – क़ुरआन, 33:36

क़ुरआन मजीद की यह और इस तरह की दूसरी बहुत-सी आयतें ऐसे लोगों के लिए सख़्त चेतावनी हैं जो ख़ुदा के अवतरित किए हुए इस नियम-विधान में सुधार और फेर-बदल करने का ख़याल अपने दिल में पाल रहे हैं। वे इस प्रकार की माँगें करते रहते हैं और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अदालतों के दरवाज़े खटखटाने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे लोगों के लिए अब एक ही रास्ता बाक़ी रह गया है, और वह यह कि अगर वे अल्लाह के उतारे हुए क़ानूनों से संतुष्ट नहीं हैं और किसी दूसरे क़ानून पर चलने के इच्छुक हैं तो वे इस्लाम की सीमा से बाहर निकलकर अपने स्थान की तलाश करें। ऐसे लोगों को बहरहाल यह हक़ तो नहीं दिया जा सकता कि वे ईश्वरीय क़ानून में उलट-फेर कराकर सारे मुसलमानों को अल्लाह का नाफ़रमान और जहन्नम का ईंधन बनाए जाने की व्यवस्था कर दें।

क़ुरआन मजीद ने ऐसे ही लोगों के लिए फ़रमाया है –

> "वे पूछते हैं कि अधिकारों में हमारा भी कुछ हिस्सा है? कहो कि सारे अधिकार तो अल्लाह के हाथ में हैं।"
>
> – क़ुरआन, 3:154

फिर सूरा नह्ल में हिदायत की –

> "अपनी ज़बानों से यूँ ही ग़लत-सलत न कह दिया करो कि यह हलाल है और यह हराम।"
>
> – क़ुरआन, 16:116

ईमान और इस्लाम की कसौटी

अल्लाह के आदेशों पर अमल करना और उनके आधार पर किए हुए फ़ैसलों को ख़ुशदिली से स्वीकार कर लेना ही इस्लाम है और इस रवैये पर अमल

करनेवाले ही मुसलमान हैं।

अल्लाह के आदेशों पर इसलिए अमल करना कि वे आदेश अल्लाह के निश्चित किए हुए हैं, मोमिन होने का गुण है। लेकिन अल्लाह के आदेशों पर यह सोचकर अमल करना कि इसमें हमारा सांसारिक प्रत्यक्ष लाभ है और जब इनसानों के बनाए हुए क़ानूनों में फ़ायदा नज़र आए तो उस ओर भाग खड़े होना, यह इस्लाम नहीं, बल्कि मुनाफ़िक़त (कपटाचार) है। अल्लाह ने मुनाफ़िक़ की पहचान बताते हुए फ़रमाया –

> ''....जब उनसे कहा जाता है कि आओ अल्लाह की उतारी हुई किताब की ओर और रसूल की ओर, तो तुम देखते हो मुनाफ़िक़ों (पाखण्डियों) को कि वे तुमसे कन्नी काटते (कतराते) हैं। – क़ुरआन, 4:61

ख़ुदा ने बाग़ियों की पहचान बयान करते हुए फ़रमाया –

> ''जो अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के मुताबिक़ निर्णय नहीं करते, वही वास्तव में ख़ुदा (ईश्वर) के बाग़ी हैं। – क़ुरआन, 5:44

इसी तरह मोमिन के आचरण की तारीफ़ करते हुए अल्लाह फ़रमाता है –

> ईमान लानेवालों का काम तो यह है कि जब वे बुलाए जाएँ अल्लाह और उसके रसूल की ओर ताकि रसूल उनके दरमियान फ़ैसला कर दे; तो वे कहें, ''हमने सुना और मान लिया।'' – क़ुरआन, 24:51

> ''नहीं, ऐ मुहम्मद! तुम्हारे रब की क़सम, ये कभी मोमिन नहीं हो सकते जब तक कि अपने परस्पर मतभेदों में तुमको फ़ैसला करनेवाला न मान लें, फिर जो कुछ तुम फ़ैसला करो उसपर अपने दिलों में भी कोई तंगी महसूस न करें, बल्कि पूर्णरूप से समर्पित होकर स्वीकार कर लें।'' – क़ुरआन, 4:65

क़ुरआन की ये आयतें वास्तव में एक मुसलमान के ईमान व इस्लाम के दावे को जाँचने की कसौटी उपलब्ध कराती हैं, जिनपर परखकर हर व्यक्ति किसी भी समय अपने ईमान और मुसलमान होने के दावे को जाँच सकता है। और यह जाँचने की प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए, क्योंकि इस्लाम वह धर्म है जो बाहर से ज़्यादा भीतर पर ज़ोर देता है और इस बात की कोशिश और माँग करता है कि

एक मोमिन का अन्दर और बाहर एक ही रंग में रंगा हुआ हो। इसलिए वह हर मुसलमान को अपना एहतिसाब (जाँच-पड़ताल, आत्म-परीक्षण) करते रहने की हिदायत करता है और इसके लिए कसौटी मुहैया करता है। मुसलमानों का फ़र्ज़ है कि वे अपने मामलात में ख़ुदा और रसूल को फ़ैसला करनेवाला बनाएँ। फिर फ़ैसला करनेवाला बनाने के बाद यह भी ज़रूरी है कि ख़ुदा और रसूल का जो भी फ़ैसला हो उसे ख़ुशदिली से क़बूल करके आज्ञाकारिता के भाव से सिर झुका दिया जाए। अगर ख़ुदा और रसूल के फ़ैसले को क़बूल करते समय दिल में किसी प्रकार की तंगी महसूस की गई तो यह इस बात की सूचक है कि दिल में ईमान रत्तीभर भी मौजूद नहीं है। अगर किसी व्यक्ति में ये दो बातें नहीं हैं तो चाहे मुसलमानों जैसा उसका नाम हो और वह ख़ुद भी अपने आपको मुसलमान कहता हो या जनगणना में उसे मुसलमानों में सम्मिलित कर लिया गया हो, लेकिन वास्तव में वह मुसलमान नहीं, बल्कि ख़ुद को धोखे में डाले हुए है और दुनिया को भी धोखा दे रहा है।

भारत में प्रचलित 'मुस्लिम पर्सनल लॉ'

परिचय और विश्लेषण

पिछले अध्याय में मुस्लिम पर्सनल लॉ से सम्बन्धित मामलों पर क़ुरआन मजीद की आयतें प्रस्तुत कर दी गई हैं। उनसे स्पष्ट पता चलता है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ से सम्बन्धित क़ानून सीधे रूप से अल्लाह तआला की ओर से अवतरित हैं। उन क़ानूनों पर अमल करना हर मुसलमान के लिए लाज़िमी ही नहीं बल्कि उसके ईमान व इस्लाम की कसौटी क़रार दिया गया है, और पैरवी नहीं करने की स्थिति में जहन्नम (नरक) की धमकी भी सुना दी गई है। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति के लिए यह तो सम्भव है कि वह इस्लाम को त्यागने का एलान कर दे, मगर यह सम्भव नहीं है कि वह मुसलमान रहते हुए उनको अपने जीवन में व्यावहारत: अपनाने से इनकार कर दे।

ऐतिहासिक समीक्षा

भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ को विविध मरहलों से गुज़रना पड़ा है। इसमें लागू होने के उत्थान व विकास के चरण भी हैं और पतन के दौर से भी इसको गुज़रना पड़ा है।

सबसे पहले दिल्ली के सुल्तानों ने आठवीं सदी ईसवी में हिन्दुस्तान में मुसलमानों के लिए मुस्लिम पर्सनल लॉ को लागू किया। उस दौर में मुसलमानों और हिन्दुओं के व्यक्तिगत मामलों को उनके धार्मिक क़ानूनों के तहत निबटाया जाता था। मुसलमानों के निकाह, तलाक़, मह्र, नफ़क़ा, विरासत, वसीयत, औक़ाफ़ (ईश्वर के नाम पर छोड़ी गई जायदादें), शुफ़आ (पड़ोसी का हक़),

हिबा (अनुदान, बख़्शिशें) और हुक़ूक़े आइला (पारिवारिक अधिकार) पर्सनल लॉ के तहत आते थे। इन मामलात में मुसलमानों के विवाद निबटाने के लिए शरई अदालतें क़ायम थीं और शरई फ़तवे के मुताबिक़ फ़ैसले होते और स्वीकार किए जाते थे। इसी तरह हिन्दुओं के मामलात भी हिन्दू धर्म-शास्त्रों के मुताबिक़ निबटाए जाते थे।

भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के बाद भी यही स्थिति जारी रही। अतः सन् 1765 ई० के फ़रमान के मुताबिक़ मुसलमानों के दीवानी और फ़ौजदारी मुक़द्दमों के फ़ैसले शरीअत के मुताबिक़ होते रहे और हिन्दुओं के मामले हिन्दू-शास्त्रों के मुताबिक़। बाद में सन् 1772 ई० में एक क़ानून बनाया गया जिसमें फिर इस स्थिति की पुष्टि की गई और शरीअत के क़ानूनों को लागू व प्रभावी रखा गया। लेकिन सन् 1832 ई० में क़ानून बनाकर फ़ौजदारी मामलों को पर्सनल लॉ के प्रभाव-क्षेत्र से अलग कर दिया गया और अब फ़ौजदारी मामलों पर अंग्रेज़ी हुकूमत के बनाए हुए क़ानूनों के मुताबिक़ सरकारी अदालतों से फ़ैसले किए जाने लगे, और मुस्लिम पर्सनल लॉ सिर्फ़ पारिवारिक मामलों तक सीमित होकर रह गया। सन् 1918 ई० में मोपला 'विरासत क़ानून' स्वीकृत किया गया और उसके दस साल बाद 1928 ई० में मोपला वसीयत ऐक्ट स्वीकृत हुआ। अन्ततः सन् 1937 ई० में शरीअत ऐक्ट स्वीकृत हुआ। उसके एक साल बाद सन् 1938 ई० में मैमन ऐक्ट मंज़ूर किया गया। सन् 1913 ई० में अल्लामा शिबली नोमानी के इजतिहाद (धर्म-चिंतन) के नतीजे में 'वक़्फ़ अलल औलाद ऐक्ट' मंज़ूर हुआ और मौलाना अशरफ़ अली थानवी के इजतिहाद (धर्म-चिंतन) पर सन् 1939 ई० में 'क़ानूने इनफ़िसाख़ निकाहुल मुस्लिमीन' मंज़ूर किया गया और हाल ही में सन् 1986 ई० में एक मुस्लिम महिला 'शाहबानो' के मुक़द्दमे में सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले से पैदा होनेवाली स्थिति को सामने रखकर 'क़ानून बराए तहफ़्फ़ुज़े हुक़ूक़ मुस्लिम मुतल्लक़ा ख़ातून' मंज़ूर किया गया।

इस तरह हिन्दुस्तान में मुस्लिम पर्सनल लॉ उत्थान-पतन के विभिन्न चरणों से गुज़रता रहा। अब आइए उनमें से कुछ क़ानूनों का जायज़ा लिया जाए—

(1) मुस्लिम पर्सनल लॉ, क़ानूने-इतलाक़े-शरीअत 1937 ई० का ख़ुलासा

(i) विरासत, निकाह, तलाक़ व विवाह-विच्छेद, ईला, ज़िहार, लिआन, ख़ुलअ्, मुबारिअत, महर्, नफ़क़ा, हिबा, वलायत और औक़ाफ़ के मामले में मुसलमानों पर मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीअत) लागू होगा, और उन मामलों से सम्बन्धित ऐसे सभी स्थानीय रस्म व रिवाज जो शरीअत से टकराते हों, बातिल (अवैध) और रद्द माने जाएँगे।

(ii) वसीयत और लेपालक (दत्तक पुत्र) के बारे में मुस्लिम पर्सनल लॉ का प्रभाव ऐच्छिक होगा, लेकिन अगर कोई आक़िल, बालिग़ (वयस्क) मुसलमान अपने को इन मामलों में भी मुस्लिम पर्सनल लॉ के अधीन कर देता है तो वह ख़ुद, उसकी नाबालिग़ औलाद और उनके बाद की नस्लें इन मामलों में भी शरीअत के क़ानून की पाबन्द होंगी।

(iii) (रियासत आन्ध्र प्रदेश के इलाक़े, आन्ध्रा और रियासत तमिलनाडु को छोड़कर शेष हिन्दुस्तान में) खेतिहर भूमि की विरासत से सम्बन्धित मुक़द्दमों पर मुस्लिम पर्सनल लॉ लागू नहीं होगा।

(iv) विरासत और वसीयत के मामलों में मोपला और मैमन मुसलमानों पर मुस्लिम पर्सनल लॉ लागू नहीं होगा, बल्कि उन लोगों के मुक़द्दमे मोपला विरासत ऐक्ट 1918 ई०, मोपला वसीयत ऐक्ट 1928 ई० और मैमन ऐक्ट 1938 ई० के तहत तय किए जाएँगे।

समीक्षा

यह है वह क़ानून जिसे मुस्लिम पर्सनल लॉ कहा जाता है। यह क़ानून अपने आपमें एक अपूर्ण व अधूरा क़ानून है जिसमें सुधार की बड़ी आवश्यकता है।

वसीयत, विरासत और मुतबन्ना (लेपालक) से सम्बन्धित क़ुरआन के प्रमाण पिछले अध्याय में गुज़र चुके हैं, जिनसे मालूम होता है कि इन मामलों में भी

मुसलमान शरीअत के उसी तरह पाबन्द बनाए गए हैं जिस तरह निकाह और तलाक़ के मामलों में, मगर क़ानून की दफ़ा 2 के मुताबिक़ वसीयत और मुतबन्ना के मामलों को ऐच्छिक (इख़्तियारी) क़रार दिया गया है। और इस तरह इस क़ानून ने शरीअत से विमुखता की राह ही प्रशस्त नहीं कर दी है, बल्कि एक मुसलमान के ईमान के लिए आज़माइश भी खड़ी कर दी है। फिर खेतिहर भूमि को शरीअत की हदों से बाहर रखा गया है। हालाँकि शरीअत में इसकी कोई गुंजाइश नहीं है। फिर यह भी निश्चित नहीं किया गया कि आख़िर उस खेतिहर भूमि का क्या किया जाएगा जिसे किसी मरनेवाले मुसलमान ने छोड़ा हो। क्या वह किसी एक ही बेटे की मिल्कियत क़रार पाएगी या फिर किसी की भी नहीं। इस सम्बन्ध में क़ानून ख़ामोश (मूक) है। स्पष्ट है ऐसी स्थिति में किसी व्यक्ति की मौत के बाद ज़मीन के मामले में उसकी औलाद में मतभेद उत्पन्न होगा, लड़ाई-झगड़े होंगे और फिर ज़मीन का दीवानी मामला अदालत में फ़ौजदारी मुक़द्दमा बनकर दर्ज होगा। इस तरह इस क़ानून में एक ऐसी कमी छोड़ दी गई है जिससे मुस्लिम समाज और अधिक बिखराव का शिकार हो सके। ज़रूरत इस बात की थी कि इसे भी मुस्लिम पर्सनल लॉ के अन्तर्गत रख दिया जाता, इस क़ानून में ज़मीन की कोई हद मुक़र्रर कर दी जाती कि इसका बँटवारा इस तरह किया जाए कि एक व्यक्ति के हिस्से में कम से कम ज़मीन का इतना हिस्सा आ जाए। फिर किसके हिस्से में कितना भाग आए इसका फ़ैसला परची डालकर (क़ुर्रा-अंदाज़ी से) कर लिया जाए और जो लोग हिस्से से महरूम (वंचित) रह जाते हैं उन्हें पूरी ज़मीन की क़ीमत मुक़र्रर करके विरासत के हिस्से के मुताबिक़ नक़द रक़म दे दी जाए। इस तरह की कोई चीज़ इस क़ानून में स्पष्ट नहीं है। फिर इस क़ानून में मुसलमानों को मोपला, मैमन और आम मुसलमानों में विभाजित किया गया है, जबकि इस्लाम की नज़र में सारे मुसलमान एक समान हैं। उनमें इस प्रकार के अन्तर और विभाजन की कोई गुंजाइश है ही नहीं।

(2) क़ानून तनसीख़े-निकाह 1939 ई० का ख़ुलासा

(i) हर मुसलमान औरत, जिसका निकाह इस्लामी तरीक़े से हुआ हो, निम्नलिखित बुनियादों पर अदालत के द्वारा निकाह को रद्द करवा सकती है :

(क) पति कम-से-कम सात वर्ष से लापता हो।

(ख) पति ने कम-से-कम दो वर्षों से नान-नफ़क़ा (खाना, ख़र्चा और रहने का ठिकाना) न दिया हो।

(ग) पति को कम-से-कम सात वर्ष की सज़ा हो गई हो (क़ैद की सज़ा के बाक़ायदा फ़ैसले से पहले इस उपबंध को लागू न किया जाएगा)।

(घ) पति ने बिना किसी उचित असमर्थता के कम-से-कम तीन वर्ष से पत्नी के साथ शारीरिक सम्बन्ध न बनाया हो।

(ङ) पति निकाह के समय से ही नामर्द (नपुंसक) हो। इस आधार पर किए गए फ़ैसलों को फ़ैसले की तारीख़ से कम-से-कम छह माह बाद लागू किया जाएगा। (अगर इस अवधि में पति अदालत को मुत्मइन कर देता है कि निकाह रद्द करने की बुनियाद बाक़ी नहीं रही, तो फ़ैसला निरस्त क़रार दिया जाएगा।)

(च) पति कम-से-कम दो वर्ष से पागलपन का शिकार हो या कोढ़ या किसी यौन-रोग का रोगी हो।

(छ) किसी पन्द्रह वर्ष से कम उम्र की लड़की का निकाह उसके बाप या क़ानूनी वली ने कर दिया हो और वह अठारह वर्ष की उम्र की हो जाने से पहले, बशर्ते कि दंपति में समागम न हुआ हो, निकाह तोड़ने के लिए दरख़ास्त दे दे।

(ज) पति निर्दयता का व्यवहार करता हो। यानी पत्नी को कठोर शारीरिक आघात पहुँचाता हो या ख़ुद व्यभिचारी का जीवन व्यतीत करता हो, या पत्नी को व्यभिचार के लिए विवश करता हो, या पत्नी की व्यक्तिगत

सम्पत्ति में हेरा-फेरी करता हो, या उसे मज़हब पर अमल करने से रोकता हो, या एक से अधिक पत्नियाँ होने की स्थिति में क़ुरआन के आदेशों के मुताबिक़ उनके साथ समानता का व्यवहार न करता हो।

(झ) कोई ऐसी बुनियाद, जिसे इस्लामी शरीअत ने निकाह तोड़ने के लिए स्वीकृति दी हो।

(ii) अगर कोई मुसलमान औरत धर्म-परिवर्तन कर ले तो उसका निकाह धर्मान्तरण के कारण अपने आप नहीं टूटेगा, जब तक वह उपर्युक्त बुनियादों में से किसी बुनियाद पर अपना निकाह अदालत के द्वारा नहीं तुड़वा लेती। धर्म-परिवर्तन के बावजूद वह अपने मुसलमान पति ही की पत्नी समझी जाएगी। हाँ, अगर यह मुस्लिम विवाहिता निकाह से पूर्व किसी दूसरे धर्म से सम्बन्ध रखती थी और बाद में मुसलमान होकर शरीअत के मुताबिक़ उसने अपना निकाह किया था और अब फ़िर अपने पुराने धर्म को ग्रहण कर रही है तो इस स्थिति में इस्लाम छोड़ देने पर उसका निकाह अपने आप टूट जाएगा।

समीक्षा

यह क़ानून मुस्लिम समाज के एक अहम मसले के हल के तौर पर उलमा के इजतिहाद के नतीजे में तैयार और मंज़ूर किया गया था। इसकी वजह से मुस्लिम समाज में बहुत-सी समस्याएँ पैदा होने से पूर्व ही हल हो जाती हैं।

(3) विशिष्ट मैरिज ऐक्ट 1954 ई० का ख़ुलासा

विशिष्ट मैरेज ऐक्ट लगभग हर दृष्टिकोण से 'हिन्दू मैरेज ऐक्ट' जैसा ही है। अन्तर सिर्फ़ इतना है कि पहले में अक़्द (निकाह) का तरीक़ा रजिस्ट्रेशन के द्वारा सम्पन्न होता है और दूसरे में हिन्दू रीतियों के द्वारा। विशिष्ट मैरेज ऐक्ट में 1976 ई० में यह संशोधन किया गया कि अगर दंपती का सम्बन्ध हिन्दू धर्म से है तो दंपती की विरासत का हक़ आधा नहीं बल्कि हिन्दू विरासत ऐक्ट के मुताबिक़ तय किया जाएगा।

(i) इस क़ानून के आधार पर एक ही धर्म के माननेवाले मर्द और औरत या दो विभिन्न धर्मों के माननेवाले दोनों पक्ष, बशर्ते कि उनकी उम्र 21 वर्ष से कम न हो, अपना धर्म परिवर्तन किए बिना आपस में शादी कर सकते हैं।

(ii) ऐसी शादी ग़ैर-अदालती तलाक़ के द्वारा नहीं टूट सकती।

(iii) जिन लोगों की शादियाँ इस क़ानून के बनने से पहले या बनने के बाद धार्मिक रीतियों से हो चुकी हों, अगर वे लोग भी चाहें तो इस क़ानून के तहत अपनी शादियों को रजिस्टर्ड करा सकते हैं, बशर्ते कि दोनों पक्ष रजिस्ट्रेशन के अवसर पर एक पति-पत्नी विवाह के सिद्धान्त पर चल रहे हों।

(iv) पहले से निकाह किए हुए सन्तानवाले लोग अगर अपनी शादी को इस क़ानून के तहत रजिस्टर्ड कराएँगे तो उनके बच्चों के नाम भी शादी के रजिस्टर में लिख लिए जाएँगे और यह समझा जाएगा कि वे बच्चे अपने माँ-बाप की जाइज़ सन्तान हैं।

(v) उपर्युक्त बच्चे अपने माँ-बाप की जायदाद के जाइज़ वारिस समझे जाएँगे। लेकिन अगर इस क़ानून की ग़ैर-मौजूदगी में उपर्युक्त बच्चे अपने समाज में जाइज़ (वैध) सन्तान न स्वीकृत किए जाने के कारण अपने माँ-बाप के सम्बन्धियों की जायदाद से वंचित कर दिए गए हों तो सिर्फ़ इस क़ानून के कारण वंचित किए जाने की क्रिया समाप्त नहीं होगी।

(vi) इस क़ानून के अन्तर्गत शादी करनेवाले दोनों पक्षों में से किसी पर भी धर्म का विरासत का क़ानून लागू नहीं होगा, बल्कि दंपती में से एक के मरने के बाद दूसरा जीवन-साथी अनिवार्य रूप से आधी जायदाद का मालिक बन जाएगा और अगर दंपती चाहें तो अपनी सारी जायदाद वसीयत के द्वारा एक-दूसरे के नाम हस्तांतरित कर सकते हैं।

समीक्षा

प्रत्यक्ष रूप से इस क़ानून का कोई सम्बन्ध मुस्लिम पर्सनल लॉ से मालूम नहीं होता, लेकिन थोड़ा ग़ौर करने पर इस सम्बन्ध की स्थिति समझ में आ जाती है जो

उसे मुस्लिम पर्सनल लॉ से है। इस क़ानून की पृष्ठभूमि कांग्रेस का वह फ़ैसला मालूम होता है जो उसने देश में एकल राष्ट्रीयता की स्थापना के सम्बन्ध में किया था। इसका उद्देश्य यह था कि इस देश में केवल एक जाति (क़ौम) मौजूद रहे और देश के सभी अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यक में इस प्रकार समाहित कर दिया जाए कि किसी का भी अपना रंग शेष न रहे। लेकिन जब मुसलमानों में इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया तो फिर इस उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में कुछ अन्य प्रयास किए गए। यह क़ानून भी उसी उद्देश्य को इंगित करता है।

इस क़ानून के द्वारा निकाह व तलाक़ की मज़हबी हैसियत को समाप्त कर दिया गया है, बल्कि उसे पवित्रता और प्रतिष्ठा के स्तर से गिराकर केवल एक साधारण समझौता बना दिया गया है। इस तरह शादी की धार्मिक पवित्रता को समाप्त करके इस बात को प्रोत्साहित किया गया है कि शादी के मामले में धार्मिक पाबन्दियों को कोई महत्त्व न दिया जाए, बल्कि किसी भी धर्म का लड़का और किसी भी दूसरे धर्म की लड़की अदालत में जाकर शादी कर सकते हैं। साथ ही एक ही मज़हब के लड़के व लड़कियाँ भी इसी तरह की शादी का फ़ायदा उठा सकते हैं। इस क़ानून के द्वारा न सिर्फ़ धर्म के बन्धन को कमज़ोर किया गया है बल्कि समाज की युवा पीढ़ी पर से समाज और माँ-बाप के अधिकार को भी छीन लिया गया है। साथ ही युवा पीढ़ी पर नैतिकता के बन्धन भी इस क़ानून से क्षत-विक्षत होते हैं। इसके अलावा युवकों-युवतियों में परस्पर दिलचस्पी लेने और इश्क़ की पेंगें बढ़ाने का रुझान भी बढ़ा है। स्पष्ट है इश्क़बाज़ी के नतीजे में समाज की निगाहों से छिपकर मिलनेवाले जोड़े इस भय से मुक्त हो गए कि अगर बात आगे बढ़ गई तो समाज इस शादी को स्वीकार नहीं करेगा। तात्पर्य यह कि एक ओर इस क़ानून से विभिन्न नैतिक एवं सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होकर सामने आ गई हैं तो दूसरी ओर इससे वह लक्ष्य भी पूरा नहीं हो सका जिसके लिए यह क़ानून बनाया गया था।

इस समीक्षा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह क़ानून न सिर्फ़ मुस्लिम

पर्सनल लॉ को क्षतिग्रस्त करता है, बल्कि देश में बसनेवाली हर जाति व क़ौम (जिसका अपना अलग पर्सनल लॉ है) के पर्सनल लॉ को क्षतिग्रस्त करता है।

(4) मुस्लिम तलाक़शुदा औरतों के अधिकारों की सुरक्षा का क़ानून (1986 ई०) का ख़ुलासा

(i) मुस्लिम तलाक़ पानेवाली औरत को तलाक़ के वक़्त महर की रक़म और उसकी मिलकियत की चीज़ें दी जानी चाहिएँ–

(क) उसके पूर्व पति को चाहिए कि अपनत्व के दयाभाव के तौर पर एक उचित राशि और खाने-पीने के ख़र्च की रक़म इद्दत की अवधि में अदा करे।

(ख) अगर वह पूर्व पति के बच्चों की परवरिश कर रही है तो ऐसी स्थिति में भी एक उचित राशि और बच्चों की परवरिश का ख़र्च बच्चे के जन्म के दो साल बाद तक दिया जाए।

(ग) एक अतिरिक्त रक़म महर के बराबर या जो रक़म शादी के वक़्त तय हो चुकी हो या बाद में तय की गई हो अदा की जाए।

(घ) औरत को शादी से पहले, शादी के वक़्त या बाद में उसके रिश्तेदारों या दोस्तों या पति और उसके रिश्तेदारों के द्वारा जो चीज़ें मालिकाना हैसियत के साथ दी गई हों, दे दी जाएँ।

(ii) अगर तलाक़ पाई हुई औरत को उपरोक्त अदायगियाँ न की गई हों तो वह ख़ुद या उसका कोई नुमाइन्दा (प्रतिनिधि) अदालत में अर्ज़ी (प्रार्थना-पत्र) देकर अदायगी का आदेश प्राप्त कर सकता है।

(iii) अर्ज़ी प्राप्त होने के एक महीने के अन्दर जज पूर्व पति को अदायगी का आदेश देगा जिसमें औरत की आवश्यकताएँ और पति के आर्थिक संसाधनों को दृष्टि में रखा जाएगा। अगर जज एक महीने के अन्दर फ़ैसला न दे सके तो वह उसके कारणों को फ़ाइल में नोट करेगा।

(iv) अगर कोई व्यक्ति आदेश को पूरा करने में विफल होता है तो जज उसे फ़ौजदारी कानून के तहत एक साल तक की क़ैद की सज़ा दे सकता है। अगर इस बीच अदायगी कर दी गई हो तो उसे रिहा कर दिया जाएगा।

अगर जज सन्तुष्ट हो कि तलाक़ पाई हुई औरत ने दूसरा विवाह नहीं किया है और वह अपने ख़र्च पूरा करने का सामर्थ्य नहीं रखती है तो जज उसके ख़र्चों की मुनासिब अदायगी का आदेश उसके रिश्तेदारों को देगा जो उस औरत की मौत की सूरत में उसके वारिस होंगे। और यह अदायगी उसी निस्बत (अनुपात) से कराई जाएगी जिस निस्बत से इस्लामी शरीअत उन्हें विरासत का हक़दार ठहराती है।

अगर तलाक़ पाई हुई औरत की सन्तान हो तो मजिस्ट्रेट सिर्फ़ उनको अदायगी का आदेश देगा लेकिन अगर उसकी आर्थिक स्थिति इस योग्य न हो तो मजिस्ट्रेट उस तलाक़ पाई हुई औरत के माँ-बाप को इसका आदेश देगा।

अगर किसी तलाक़ पाई हुई औरत के माँ-बाप में से किसी की स्थिति इस योग्य न हो कि वह आदेशानुसार अदायगी कर सके तो मजिस्ट्रेट आश्वस्त और मुत्मइन होने पर दूसरे रिश्तेदारों को इस अदायगी का आदेश देगा।

अगर कोई तलाक़ पाई हुई औरत अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता नहीं रखती है या उसका कोई सम्बन्धी नहीं है या अगर है भी तो उनमें से सब या कुछ अदायगी की क्षमता नहीं रखते तो मजिस्ट्रेट राज्य के वक़्फ़ बोर्ड को आदेश देगा कि वह असमर्थ सम्बन्धियों के हिस्से की रक़म अदा करे।

(5) फ़ौजदारी क़ानून की धारा 125 से 128 को अपनाने का अधिकार

अगर आवेदन की सुनवाई की पहली पेशी पर तलाक़ पाई हुई औरत और उसका पूर्व पति व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से अदालत में आवेदन पत्र पेश करें कि वे अपने मामले को फ़ौजदारी क़ानून की दफ़ा 125 से 128 के अनुसार फ़ैसला कराना चाहते हैं तो मजिस्ट्रेट उसके अनुसार फ़ैसला देगा।

समीक्षा

इस क़ानून में मह्र और औरत की मिल्कियत (सम्पत्ति) के अलावा एक न्यायोचित राशि (A reasonable and fair provision) अदा करने को भी क़ानूनी हैसियत दे दी गई है और कारण यह बताया जाता है कि चूँकि शादी हो जाने और तलाक़ होने से औरत की हैसियत को नुक़्सान पहुँचता है इसलिए यह रक़म उसके मुआवज़े के रूप में दी जाती है।

क़ानून के इस अनुबन्ध के आधार पर अदालतें तलाक़ देनेवाले पति से बड़ी-बड़ी रक़में तलाक़ पानेवाली औरत को अदा करने का हुक्म दे रही हैं जिसके कारण पति को नापसन्दीदा औरत से छुटकारा पाने के लिए तलाक़ देना अभिशाप बनकर रह गया है।

इस क़ानूनी अनुबन्ध के निरर्थक और इस्लाम-विरुद्ध होने को समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालना उचित होगा।

इस्लाम ने औरत के व्यक्तित्व को आधारभूत महत्व प्रदान किया है। शादी के परिणामस्वरूप चूँकि उसके कौमार्य (कुँवारेपन) की स्थिति क्षतिग्रस्त हो जाती है, इसलिए उसके मुआवज़े में इस्लाम शादी के समय मह्र के निर्धारण को अनिवार्य क़रार देता है। अत: जिन औरतों से निकाह हराम है उनके वर्णन के बाद फ़रमाया –

> ''उनके अतिरिक्त जितनी औरतें हैं उन्हें अपने धन (मह्र) के द्वारा प्राप्त करना तुम्हारे लिए हलाल (वैध) कर दिया गया है। बशर्ते कि निकाह के दायरे में उनको सुरक्षित करो, न यह कि स्वतंत्र व्यभिचार करने लगो। फिर जो दांपत्य जीवन का सुख-आनन्द तुम उनसे उठाओ उसके बदले उनके मह्र अनिवार्यत: उन्हें अदा करो।''
> – क़ुरआन, 4:24

फिर एक दूसरी जगह फ़रामया –

> ''मर्द औरतों के निगराँ व ज़िम्मेदार हैं, इस आधार पर कि अल्लाह ने उनमें से एक को दूसरे पर श्रेष्ठता दी है, और इस आधार पर कि पुरुष अपने माल ख़र्च करते हैं।''
> – क़ुरआन, 4:34

इस्लाम तो एक ऐसा संवेदनशील धर्म है कि जिस दौर में नारी-अधिकार की दुनिया में कोई अवधारणा भी नहीं थी उस दौर में भी इसने उसका ध्यान रखा है। अतएव ऐसी स्थिति में कि शादी हो चुकी है और अभी समागम का अवसर भी नहीं आया कि परिस्थितियों ने विवश कर दिया कि नव-विवाहिता दुल्हन को तलाक़ दे दी जाए, तो इस्लाम मर्द को पाबन्द करता है कि मात्र निकाह से उसकी हैसियत को जो नुक़सान हुआ है उसका मुआवज़ा अदा किया जाए।

अत: फ़रमाया –

> ''तुमपर कुछ गुनाह (पाप) नहीं अगर अपनी औरतों को तलाक़ दे दो इससे पूर्व कि उसे हाथ लगाने (समागम करने) की नौबत आए, या महर् मुक़र्रर हो। इस स्थिति में उन्हें कुछ न कुछ देना ज़रूर चाहिए।'' – क़ुरआन, 2:236

इस स्थिति में मुसलमान फ़ुक़हा (धर्म-विधान के अधिकारी, विद्वान) आधी महर् की अदायगी को शरीअत का अभिप्राय ठहराते हैं।

यह है वह विधान जो इस्लाम ने तलाक़ की स्थिति में औरत के अधिकार और उसकी व्यक्तिगत हैसियत (Personal Reputation) की क्षति होने के मुआवज़े के तौर पर मुक़र्रर किया है। यहाँ तक कि अगर दोनों ने एक-दूसरे से फ़ायदा न भी उठाया हो तब भी आधी महर् की अदायगी मर्द पर अनिवार्य की गई है। ऐसी स्थिति में महर् की रक़म के अलावा किसी बड़ी रक़म को अदा करने का हुक्म देने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

अब इस सिलसिले में इस्लाम के एक और हुक्म को भी सामने रखा जाए। इस्लाम एक पूर्ण न्याय पर आधारित नैतिक व्यवस्था है। वह अपने समाज को क़ानून के डण्डे से नहीं, बल्कि नैतिक नियमों से व्यवस्थित करता है। उसके नैतिक नियम का एक सिद्धान्त यह भी है कि मुसलमान जब आपस में मिलें तो ख़ुशदिली और प्रसन्नता से मिलें और अगर किसी कारण से बिछड़ना पड़े तो वहाँ भी ख़ुशदिली दरमियान में मौजूद रहे। वह दुश्मनों की तरह बिछड़ने को किसी भी हाल में पसन्द नहीं करता। उसने तलाक़ पानेवाली औरत के बारे में भी इस नियम के पालन को अनिवार्य ठहरा दिया है। अत: फ़रमाया –

"इसी तरह जिन औरतों को तलाक़ दी गई हो उन्हें भी मुनासिब तौर पर कुछ न कुछ देकर विदा किया जाए। यह हक़ है मुत्तक़ी (ख़ुदा से डरनेवाले) लोगों पर।"

– क़ुरआन, 2:241

यह एक सीधा-सादा नैतिक उपदेश था। इसके बारे में इस्लाम के फ़ुक़हा (धर्म-विधान वेत्ता) कहते हैं कि तलाक़ पाई हुई औरत को विदा करते समय कम-से-कम उसे एक जोड़ी कपड़े बनवाकर दे दिए जाएँ और अगर यह भी सम्भव न हो तो कम-से-कम एक दुपट्टा ही देकर घर से विदा किया जाए ताकि जिस तरह निकाह के समय भले-मानुसों की तरह जुड़े थे उसी प्रकार भले लोगों की तरह विदा भी हो जाएँ। मगर इस्लाम दुश्मनी और पक्षपातपूर्ण मानसिकता और असहिष्णुता ने इसी आयत में मरने के समय तक खाना-ख़र्चा अदा करने का अर्थ ठूँस दिया और जब क़ानून बनाया गया तो इसको आधार बनाकर पति से तलाक़ पानेवाली औरत को भारी रक़म अदा करने का आदेश देने का अदालतों को अधिकार दे दिया गया, और इस प्रकार एक ओर इस आयत की नैतिक आत्मा समाप्त हो गई तो दूसरी ओर तलाक़ देना पति का अधिकार नहीं, बल्कि उसको क़ानूनी अपराध बना दिया गया, और तीसरी ओर मुस्लिम समाज एक सूक्ष्म नैतिक अन्तरचेतना से वंचित कर दिया गया।

क़ानूनों पर व्यापक समीक्षा

ये हैं वे मुख्य क़ानून जो इस देश में मुस्लिम पर्सनल लॉ के नाम से प्रचलित हैं। बुनियादी तौर पर तो शरीअत ऐक्ट 1937 ही मुख्य है। शेष क़ानून या तो उसी का स्पष्टीकरण या व्याख्याएँ हैं या आरोपण के विविध रूप। इन चार क़ानूनों में से तीन तो अधूरे हैं, बल्कि इस्लाम के विपरीत और मुस्लिम समुदाय के लिए समस्याएँ बढ़ानेवाले हैं।

अनिवार्य आवश्यकता

ऐसी स्थिति में इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ

में संशोधन के समय मुस्लिम समुदाय अपना नकारात्मक रवैया बदले और सकारा-त्मक रवैया अपनाकर क़ानूनी ख़ामियों को दूर करने की दिशा में ध्यान दे और मुस्लिम समुदाय को उन समस्याओं से मुक्ति दिलाने की कोशिश करे जो उन विकृत अधूरे क़ानूनों के परिणाम स्वरूप पैदा हो रही हैं।

मुस्लिम पर्सनल लॉ की तबदीली के पीछे कार्यरत गिरोह

प्राचीन हिन्दू सभ्यता, इस्लामी सामाजिक व्यवस्था और आधुनिक हिन्दू समाज में बढ़ती हुई उच्छृंखलता का अध्ययन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। प्राचीन हिन्दू सभ्यता के अध्ययन से मालूम होता है कि –

(1) औरत की प्रकृति इसी बात की माँग करती है कि वह सिर्फ़ उसी की वफ़ादार रहे जिसको उसने पति के रूप में स्वीकार किया है। इसका प्रमाण पाण्डव की पत्नी कुन्ती, गौतम की पत्नी अहिल्या, पाण्डवों की पत्नी द्रोपदी और सीता जी के व्यवहार से अच्छी तरह सिद्ध होता है।

(2) इस अध्ययन से पुरुष की इस प्रकृति का भी सुबूत मिलता है कि वह जिस औरत को पत्नी की हैसियत से क़बूल करता है, उसे सिर्फ़ अपनी ही वफ़ादार देखना चाहता है। यही वजह है कि जब महर्षि गौतम की पत्नी अहिल्या के साथ दुराचार होता है तो महर्षि गौतम क्रोधित होकर अपनी पत्नी व कुकर्म करनेवाले के साथ उसमें सहयोगियों को भी श्राप दे देते हैं। इसी प्रकार रामचन्द्र जी का भरे दरबार में सीता जी से उनके शील और सतीत्व का सुबूत माँगना और धोबी की बात सुनकर, उन्हें जंगल भिजवा देना भी इस बात का प्रमाण है कि मर्द की प्रकृति चाहती है कि उसकी बीवी उसी की और सिर्फ़ उसी की रहे। यह बात दूसरी है कि वह दूसरों के बारे में वही न चाहता हो जो अपने लिए चाहता है।

(3) इस अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन सभ्यता न तो मर्द की प्राकृतिक इच्छा पूरी कर रही थी और न औरत की। इसलिए इससे दोनों

असन्तुष्ट थे।

(4) हिन्दू समाज में औरत की हैसियत निश्चित नहीं है। इसी लिए हालात और माहौल के अनुसार उसकी हैसियत बदलती रही है।

(5) इस अनिश्चित हैसियत की वजह से प्राचीन हिन्दू समाज में हमेशा औरत का शोषण होता रहा है।

भारत में इस्लामी समाज की लोकप्रियता

पिछले पृष्ठों के अध्ययन से यह भी मालूम हुआ है कि इस्लामी सामाजिक-व्यवस्था में चूँकि मर्द और औरत की प्रकृति की ये सारी माँगें पूरी हो रही थीं, इसलिए जब मुसलमान इस देश में आए तो उनकी सामाजिक-व्यवस्था ने हिन्दू सामाजिक-व्यवस्था को बहुत प्रभावित किया। लोग मुसलमान तो नहीं हुए, मगर इस्लामी समाज के प्रभाव को ज़रूर क़बूल कर लिया और हिन्दू औरतों ने स्वतन्त्र मेलजोल से बचना शुरू कर दिया, चेहरे पर घूँघट निकालने लगीं, ज़िना (व्यभिचार) घृणित ठहराया गया, औरतों के साथ इज़्ज़त का बरताव किया जाने लगा, उनका शील और सतीत्व आदरणीय ठहरा, शादी के अलावा शारीरिक सम्बन्ध के दूसरे तरीक़ों को बुरा समझा जाने लगा। मुसलमान बादशाहों ने यद्यपि हिन्दू समाज के सुधार की ओर अपनी असाधारण निष्पक्षता के कारण कोई ध्यान नहीं दिया, इसके बावजूद मुस्लिम सभ्यता के असर से हिन्दू जाति में बहुत-से सुधार आन्दोलन शुरू हुए, जिनमें से बाल-विवाह के विरुद्ध अभियान, विधवा-विवाह अभियान, सती-प्रथा के विरुद्ध आवाज़ और इस तरह के बहुत-से आन्दोलन प्रमुख हैं। इन सब तबदीलियों की वजह से हिन्दू समाज में औरत को बड़ा सहारा मिला और वह शान्ति की साँस लेने के क़ाबिल हो सकी। इसके बावजूद देश की आज़ादी के साथ ही इस देश में बहुसंख्यक जाति की तरफ़ से मुस्लिम पर्सनल लॉ में परिवर्तन करने की कोशिशों का सूत्रपात हो गया, और यह माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

भारतीय संविधान का विरोधाभास

हालाँकि देश का संविधान अपनी धारा-25 के अनुसार पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता देते हुए कहता है –

25(i) — "तमाम लोगों को अन्त:करण की स्वतंत्रता और स्वतंत्रतापूर्वक धर्म स्वीकार करने, उसका अनुसरण और प्रचार करने का समान अधिकार प्राप्त है, बशर्ते कि सार्वजनिक शान्ति, सार्वजनिक नैतिकता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और इस भाग के अन्य विवेचन प्रभावित न हों।"

इसी संविधान में एक और धारा-44 भी शामिल कर दी गई है जिसके मुताबिक़ –

> "सरकार यह कोशिश करेगी कि भारत के पूरे क्षेत्र में नागरिकों के लिए समान सिविल कोड लागू करने की ज़मानत हो।"

भारत में वे लोग, जो मुस्लिम पर्सनल लॉ में परिवर्तन की माँग कर रहे हैं, संविधान की धारा-44 को इसके लिए काफ़ी समझते हैं और इसकी बुनियाद पर परिवर्तन की माँग करते रहते हैं, जबकि संविधान की धारा-25, (जो स्थाई धारा है) में पूरी धार्मिक आज़ादी की ज़मानत दी गई है, साथ ही संविधान की भूमिका में भी इसका वर्णन किया गया है। ऐसी दशा में इस संविधान में एक ऐसी धारा कैसे रख दी गई जिसमें सरकार को हिदायत की गई है कि वह समान सिविल कोड तैयार करने और उसके लिए वातावरण तैयार करने की कोशिश करे। इसका मतलब यह है कि हमारे संविधान में ख़ुद विरोधाभास है जो एक तरफ़ धार्मिक स्वतंत्रता की ज़मानत देता है तो दूसरी तरफ़ जनसाधारण को धर्म के विरुद्ध करने की इस हद तक कोशिश करता है कि वे अपने कौटुम्बिक विधान (पर्सनल लॉ) में संशोधन करने के लिए तैयार हो जाएँ। फिर देश का जो ग़ैर-मुस्लिम समुदाय इस धारा की दुहाई देकर देश के लिए समान सिविल कोड की माँग कर रहा है वह स्वयं भी हिन्दू कोड बिल पर अमल कर रहा है। कम से कम इस माँग से पहले उन्हें तो इस कोड बिल को निलम्बित करके देश के साधारण क़ानूनों के अनुसार अपनी कौटुम्बिक समस्याओं का फ़ैसला कराना चाहिए था। फिर हाल ही में भारतीय

संविधान में धारा-44 मौजूद होते हुए भारत सरकार सिखों के लिए 'सिख पर्सनल लॉ' बनाने के लिए तैयार हो गई है जिसका मुसव्वदा तैयार किया जा रहा है। ऐसी दशा में मुस्लिम पर्सनल लॉ में परिवर्तन की माँग हास्यास्पद माँग बनकर रह जाती है।

बुनियादी हुक़ूक़ और मार्गदर्शक सिद्धान्तों का फ़र्क़

इसके अलावा यह बात भी ध्यान में रहे कि धारा-25 का सम्बन्ध नागरिकों के आधारभूत अधिकारों से है, जिनके बारे में संविधान की धारा-13 में खुलकर स्पष्ट कर दिया गया है कि –

13 (1) ''वे सब क़ानून जो इस संविधान के लागू दिनांक से ठीक पूर्व भारत में लागू हों, जहाँ तक वे इस भाग से टकराएँ, ऐसे टकराव की हद तक निरर्थक होंगे।''

(2) ''सरकार कोई ऐसा क़ानून नहीं बनाएगी जो इस भाग में प्रदत्त अधिकारों को छीन ले या उनमें कमी करे, और कोई क़ानून जो इस वाक्य के विरुद्ध बनाया जाए वह अमान्य होगा।''

उपरोक्त स्पष्टीकरण आधारभूत अधिकारों के बारे में संविधान में किया गया है, और धारा-44 का सम्बन्ध संविधान के उस भाग से है जिसमें 'राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त' बयान किए गए हैं। ऐसी दशा में चूँकि यह धारा आधारभूत अधिकारों के विरुद्ध जाती है, इसलिए इसे निरस्त ठहराया जाना चाहिए, जैसाकि संविधान की धारा-13(1) का मंशा है।

मुस्लिम पर्सनल लॉ में परिवर्तन की माँग

भारतीय संविधान की धारा-44 की वजह से साधारणत: देश के बहुसंख्यक धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं की ओर से और कभी-कभी सरकार में बहुसंख्यक समुदाय से सम्बन्धित ज़िम्मेदारों की ओर से भी मुस्लिम पर्सनल लॉ में परिवर्तन की माँग उठती रहती है। मुसलमानों की ओर से जब इस

माँग का विरोध किया जाता है तो इसे मुसलमानों की हठधर्मी और धार्मिक अतिवाद क़रार दिया जाता है और इसके बाद माँग और कठोर होती चली जाती है। इसी के साथ इस माँग में भी ज़िद, हठधर्मी और बहुसंख्यक होने का नशा शामिल हो जाता है। ऐसे हालात में कुछ ऐसे मुसलमान भी मिल जाते हैं जो स्वार्थी, मिल्लत-फ़रोश, अवसरवादी और पदलोलुप होते हैं। वे इस अवसर से लाभ उठाकर बहती गंगा में हाथ धोना शुरू कर देते हैं और बहुसंख्यकों की माँग का समर्थन करके उनकी प्रसन्नता प्राप्त करने और सरकार में इस प्रकार के दृष्टिकोण रखनेवाले लोगों की हमदर्दी हासिल करने में लग जाते हैं और मुस्लिम पर्सनल लॉ में परिवर्तन का समर्थन करना शुरू कर देते हैं। बहुसंख्यक वर्ग ऐसे मुसलमानों को हाथों-हाथ लेते हैं और फिर वे मुसलमानों के बुद्धिमान, समझदार और उन्नतिशील व्यक्ति कहे जाने लगते हैं। ये लोग यद्यपि कॉलेज और यूनीवर्सिटियों की डिग्रियाँ तो रखते हैं, और इस कारण किसी न किसी ज़बान में कुछ-न-कुछ लिखने और बोलने की योग्यता भी रखते हैं किन्तु इस्लाम और इस्लामी सामाजिक-व्यवस्था के ज्ञान में निरे जाहिल (पूर्णतः अनभिज्ञ) होते हैं और इतने हठी और ग़ैर-ज़िम्मेदार भी कि इस विषय पर क़लम उठाने से पहले 'मुस्लिम पर्सनल लॉ क्या है, और क्यों है?' इसे जानने की ज़रूरत भी महसूस नहीं करते। इन लोगों के इस रवैये की वजह से बहुसंख्यक समुदाय के लोग और भी धोखे में पड़ जाते हैं और फिर जो लोग इस परिवर्तन का विरोध करते हैं उनपर दोषारोपण (इलज़ामात) की बारिश शुरू हो जाती है।

बहुसंख्यक वर्ग की विवशता

जहाँ तक बहुसंख्यक वर्ग के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक नेताओं और जन साधारण का सम्बन्ध है, उनकी इस्लाम के बारे में जानकारी बिलकुल नहीं होती, यहाँ तक कि अत्यंत साधारण बातों का भी उन्हें ज्ञान नहीं होता है। ख़ुद उनके अपने धर्म की भी कोई बुनियादी शक्ल उनके पास नहीं है। उनकी सामाजिक व्यवस्था एवं विधान भी इतिहास के विभिन्न कालों और परिस्थितियों में, अपने

आकृति और प्रकृति में, परिवर्तित होती रही हैं जिसकी वजह से उनकी समझ में यह बात आती ही नहीं कि दुनिया में कोई मज़हब ऐसा भी हो सकता है जिसके बुनियादी नियम इतने व्यापक हैं कि वे हर परिस्थिति और काल में उपयोगी सिद्ध हुए हैं और होते रहेंगे, जिस कारण वे अपरिवर्तनशील रहे हैं।

तथाकथित मुसलमान

एक तरफ़ तो देश के बहुसंख्यक समुदाय की यह कमज़ोरी है जो ऊपर बयान की गई है और दूसरी तरफ़ स्वार्थी और ग़ैर-ज़िम्मेदार लोगों या तथाकथित मुसलमानों का रवैया उन्हें और भी धोखे में डालने का कारण बन जाता है और वे सोचने लगते हैं कि मुसलमानों की यह ज़िद देश के बहुसंख्यक समुदाय के धर्म से दुश्मनी रखने की वजह से है, और इसके बाद धार्मिक दुश्मनी फिर अपना रंग दिखाना शुरू कर देती है।

हिन्दू धर्म का स्वभाव

एक तरफ़ तो बहुसंख्यक समुदाय की यह मजबूरी है जिसमें कुछ तथाकथित मुसलमानों का रवैया भ्रम पैदा करने में लगा हुआ है तो दूसरी तरफ़, जैसा कि बताया जा चुका है कि देश की आज़ादी की संभावना पैदा होने के बाद से अब तक, देश में प्राचीन हिन्दू सभ्यता के पुनरुत्थान की कोशिशें तेज़ से तेज़तर होती जा रही हैं। यह बात बहरहाल एक प्रश्न बनी हुई है कि जिस हिन्दू धर्म के स्वभाव के बारे में कहा जाता हो कि –

> "It is rational synthesis which goes on gathering into itself new conceptions as philosophy progresses. It is experimental and provisional in nature."
>
> ''यह (हिन्दू धर्म) बौद्धिक क्रम है जो अपने अन्दर नई-नई कल्पनाओं का विस्तार करता चला जाता है जैसे-जैसे दर्शन उन्नति करता जाता है। यह अपने स्वभाव में तजुरबाती और आधुनिक समय से सम्बन्धित है।''
>
> (डॉ० राधा कृष्णन)

और इसके बारे में इस बात का वर्णन किया जाने लगा हो –

"Inevitably it has to be the confluence of many races, many cultures and many beliefs. Hinduism is a federation of many faiths. It was evolved by weavings together the beliefs of many social and cultural strains." (Illustrated Weekly, 15-6-1980)

''वास्तव में यह (हिन्दू धर्म) अनेक जातियों, अनेक सभ्यताओं और अनेक विश्वासों का समागम है। हिन्दूइज़्म बहुत-से विश्वासों का संघ है। समाज और सभ्यता की विभिन्न धाराओं के आपसी मेल से इसका निर्माण हुआ है।''

इस धर्म को पाँच हज़ार वर्ष पहले के ज़माने में ले जाने की कोशिश केवल इसलिए की जाने लगी है ताकि इसने मुस्लिम युग में जो कुछ हासिल किया है उसके प्रभावों को धो डाला जाए। अर्थात इस धर्म के माननेवालों की यह इच्छा हिन्दू-धर्म के उपरोक्त स्वभाव के विरुद्ध है।

इतिहास का अध्ययन

इस रहस्य को समझने के लिए भारत के इतिहास का गहन अध्ययन हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन बताता है कि इस देश में दो प्रकार के धर्म पाए गए हैं। इनमें एक समूह वह है जो उन धर्मों पर आधारित है जो इसी देश में हिन्दू धर्म के विरुद्ध बग़ावत के रूप में पैदा हुए हैं। धर्मों का एक दूसरा समूह वह है जिसके माननेवाले कहीं बाहर से आए हैं और धर्म-प्रचार तथा विजय-प्राप्ति से इस देश में अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल हो गए हैं। आर्यों ने पहले प्रकार के धर्मों जैसे— बौद्ध धर्म और जैन धर्म के बारे में यह पालिसी अपनाई कि उनसे सिद्धान्त, रीतियों और देवी-देवताओं का आदान-प्रदान करके उन्हें हिन्दू धर्म की शाखाएँ क़रार दे दिया और इस प्रकार उन्हें अपने धर्म में शामिल कर लिया। लेकिन दूसरे प्रकार के धर्मों के बारे में आर्यों ने इस तरह की समानताएँ पैदा करने की कोशिशें कीं कि धीरे-धीरे वे अपनी विशेषताएँ खोते चले गए और आज इतिहास में भी उनका नाम मुश्किल से मिलता है। इन बाहर से आनेवाले धर्मों में दो धर्म बहुत सख़्त सिद्ध हुए, इनमें एक ईसाई धर्म था और दूसरा इस्लाम। देश की आज़ादी के साथ ही अंग्रेज़ तो इस देश से चले गए और उनके

जाने के बाद जो थोड़े ईसाई इस देश में रह गए हैं उनकी संख्या नगण्य है, इसलिए उनसे किसी प्रकार का सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव का ख़तरा मौजूद नहीं है। रहे मुसलमान तो इनका मामला अलग प्रकार का है। इस धर्म को भी आत्मसात करने की बहुत-सी कोशिशें की गईं। दोनों धर्मों में अनेकों समानताएँ तलाश की गईं, मगर इन सबके बावजूद इस धर्म ने अपनी पहचान अलग बनाए रखने पर ज़ोर दिया। जब आज़ादी मिलने की संभावना निकट होती दिखाई दी तो 'शुद्धि आन्दोलन' द्वारा इन्हें दोबारा हिन्दू बनाने की कोशिश की गई। इस आन्दोलन की असफलता के बाद धर्मों की समानता, संयुक्त जातीयता, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय धारा और भारतीयकरण जैसे अनेक नारों से इस लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश की गई। मगर ये सारी तरकीबें असफल हो गईं। अन्त में हिन्दू पुनरुत्थानवाद आन्दोलन में ज़ोर पैदा किया गया। इसके नतीजे में समाज बड़ी तेज़ी से काम-पिपासा, काम-उच्छृंखलता और औरत के शारीरिक शोषण की ओर बढ़ रहा है।[1]

पुनरुत्थानवादियों की कठिनाई

हिन्दू समाज में इन परिवर्तनों और नैतिक पतन से देश का आम हिन्दू सन्तुष्ट नज़र नहीं आता और इन पुनरुत्थानवादियों के पास इसकी व्याख्या का कोई ऐसा तरीक़ा भी नहीं है जिसकी मदद से वे इन असंख्य उठनेवाले प्रश्नों का उत्तर दे सकें। जो इन हालतों की वजह से दिलों में पैदा हो रहे हैं। सबसे बड़ा सहारा वे युग और समय के प्रभावों से ले सकते थे। उदाहरण स्वरूप यूरोपीय समाज को प्रस्तुत करके मुँह बन्द कर सकते थे। मगर उनकी मुश्किल यह है कि इसी भारत में एक समानान्तर मुस्लिम समाज भी मौजूद है, जो आज भी अपनी विशेषता और प्रभाव को बरक़रार रखे हुए है और जिसमें ज़रा-सा भी यूरोपीय प्रभाव मौजूद नहीं है। इसलिए एक आम हिन्दू को यह बात समझने में बड़ी कठिनाई और उलझन होती है कि एक देश में बसनेवाले इन दोनों समाजों में आख़िर इतना अन्तर क्यों है। अगर ये हालात और ज़माने के प्रभाव होते तो ये प्रभाव दोनों समाजों पर समान

1. देखें : पुस्तक ''मुस्लिम पर्सनल लॉ पर नज़रे-करम का पसमंज़र'' (उर्दू)।

रूप से पड़ते, और अगर यह ग़रीबी और अशिक्षा के कारण हो रहा है तो आज़ादी के बाद मुस्लिम समाज इन दोनों की चपेट में अपेक्षाकृत अधिक आया है, इसलिए ये प्रभाव इनपर अधिक होने चाहिए थे। पुनरुत्थानवादियों के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर मौजूद नहीं है। इसलिए वे धार्मिक संकीर्णता की दीवारें खड़ी करके दोनों समाजों में दूरी पैदा करने की कोशिशों में लगे हुए हैं, साथ ही धार्मिक भावावेश उत्पन्न करके काम चला रहे हैं। मगर मुश्किल यह भी है कि भावुकता एक अस्थाई साधन है जिसे स्थायित्व प्राप्त नहीं होता और जो सत्य की चट्टानों से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। फिर एक इनसान अपनी माँ, बीवी, बेटी और बहन के बारे में जितना हस्सास और भावुक होता है, धार्मिक भावुकता उसके मुक़ाबले में अपना प्रभाव ख़ो देती है और सत्य से आँखें चुराना सम्भव नहीं रह जाता। इसका इलाज करने के लिए धार्मिक घृणा को इस प्रकार हवा दी जा रही है कि किसी बात को रद्द कर देने के लिए बस इतनी बात काफ़ी है कि वह मुसलमानों से सम्बन्धित है, ताकि लोग खुले दिलो-दिमाग़ से दोनों समाजों का तुलनात्मक अध्ययन करके इस्लामी समाज-व्यवस्था के विशेष गुणों और बुद्धिमत्तापूर्ण सन्तुलन से प्रभावित न हो जाएँ, अन्यथा फिर जो सैलाब फूट पड़ेगा उसको रोकने के लिए उनके पास कोई ताक़त मौजूद नहीं है।

पुनरुत्थानवादियों की कार्य-पद्धति

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस समुदाय ने दो-तरफ़ा कार्यवाही करनी शुरू कर दी है। एक ओर हिन्दू धर्म पर काल्पनिक ख़तरे का शोर मचाकर हिन्दू-जाति के संगठन के नाम पर धर्म को भावुकता के हवाले कर दिया गया है। और इस कार्य के लिए रोज़ नई-नई समितियाँ अस्तित्व में आ रही हैं जिनके द्वारा हिन्दू-जाति को धार्मिक भावुकता के जाल में जकड़ने की कोशिशें की जा रही हैं। जैसाकि 19 नवंम्बर 1983 को आरम्भ होनेवाली एकात्मकता यज्ञ-यात्रा के अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद के जनरल सेक्रेट्री श्री बी० एल० शर्मा ने कहा –

> "Hindus are like a dying bull which we are trying to yank up by its tail and bring back to life again....."

अर्थात् ''हिन्दू प्राय: मृत सांड के समान हैं जिन्हें हम दुम पकड़कर उठाने की कोशिश कर रहे हैं ताकि वे दोबारा जीवन प्राप्त करें.....।''

— सण्डे, 11 से 17 दिसम्बर, 1983

और दूसरी ओर भारत से मुस्लिम समाज को समाप्त करने की कोशिशें जारी हैं, ताकि पारस्परिक तुलना की कोई संभावना बाक़ी न रहे और प्राचीन सभ्यता के पुनरुत्थान को पूरी शक्ति से प्रभावकारी बनाया जा सके। चूँकि मुस्लिम समाज का गठन मुस्लिम पर्सनल लॉ के द्वारा होता है, इसलिए जब तक इसको परिवर्तित न किया जाए और इसे समाप्त करके ख़ानदानी मामलों के लिए भी कॉमन सिविल कोड स्वीकार नहीं करा लिया जाए, मुस्लिम समाज की अपनी विशिष्ट पहचान को समाप्त नहीं किया जा सकता। इस कारण देश में मुस्लिम पर्सनल लॉ को परिवर्तित करने की माँग ज़ोर पकड़ने लगी है।

पर्सनल लॉ में परिवर्तन का परिणाम

इस देश में चूँकि हिन्दू जाति ज़बरदस्त बहुसंख्यक जाति है, इसलिए स्पष्ट है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ के समाप्त होने पर कॉमन सिविल कोड वह क़ानून होगा जो देश की बहुसंख्यक जाति के विश्वासों, धर्म, भावनाओं और संस्कृति व सभ्यता से तालमेल रखनेवाला हो। इस तरह इसके बाद भारत के हिन्दू और मुसलमान एक ही क़ानून के अन्तर्गत हो जाएँगे और पुनरुत्थानवादी प्रभाव मुस्लिम समाज पर भी पड़ने लगेंगे जिस तरह आज हिन्दू समाज पर पड़ रहे हैं। समाचार पत्र पढ़नेवाले व्यक्ति और वे व्यक्ति जो आँखें खोलकर जीने के आदी हैं, इन हालात से अच्छी तरह परिचित हैं।

पर्सनल लॉ के समाप्त हो जाने के बाद परदा समाप्त कर दिया जाएगा। मुसलमान औरतें बाज़ारों, सड़कों, क्लबों, दर्शनीय स्थानों, नाइट क्लबों, दुकानों, कारख़ानों और दफ़्तरों में आज़ादी से उपलब्ध होने लगेंगी, क्योंकि इस्लाम का बनाया हुआ सुरक्षित क़िला (परदा) गिराया जा चुका होगा, जिसने अभी तक मुसलमान औरत को शोषण से सुरक्षित रखा है। मुस्लिम औरत की ग़ुलामी और

दयनीय अवस्था का शोर मचानेवालों के दिल में ज़रा-सी भी निष्ठा की चिंगारी होती तो पूरे देश में मुस्लिम दमनकारी दंगों का तूफ़ान कभी न उठता। इसलिए कि इन दंगों से मुसलमान औरत भी प्रभावित होती है और उसके कारोबार भी तबाह होते हैं। उसकी सन्तान का क़त्ल, उसके पति की मौत, उसके माता-पिता का ख़ून, उसका अपहरण, उसके साथ पाशविक व्यवहार और व्यभिचार ...... और स्वयं उसका क़त्ल तक कर दिया जाता है । ये लोग मुसलमान औरत की दयनीय स्थिति की तथाकथित कहानियाँ घड़ रहे हैं और देश में उसी 'अत्याचार-पीड़ित' औरत के विरुद्ध ये हालात पैदा कर रहे हैं। उनके इस रवैये से यह भी मालूम होता है कि मुसलमान औरत के साथ सहानुभूति वास्तव में मगरमछ के वे आँसू हैं जिनके परदे में कुछ दूसरे लक्ष्य छुपे हुए हैं, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अर्थात् परदे के इस सुरक्षित क़िले को गिराकर उसे भी उन्हीं परिस्थितियों में फँसा देना है जिनका जायज़ा पिछले पृष्ठों में लिया जा चुका है।

क्या पूरा हिन्दू समाज पुनरुत्थानवादी है?

सवाल पैदा होता है कि क्या पूरी हिन्दू जाति इस विषय में एक मत है और मुसलमान औरत के विरुद्ध तैयार की गई इस साज़िश में शरीक है। अगर पूरी हिन्दू जाति को इस साज़िश में बराबर का शरीक मान लिया जाए तो इसका मतलब यह होगा कि वह अपनी पत्नी, अपनी बेटी, अपनी बहन और माँ की इस दशा पर सन्तुष्ट हो चुकी है जिसमें आज वह फँसी है। और अगर यह मान लिया जाए तो इसका मतलब यह होगा कि इस देश का अन्त:करण पूरी तरह मुर्दा हो चुका है। और चूँकि हिन्दू-जाति इस देश की बहुसंख्यक जाति है, इसलिए इसका मतलब यह होगा कि इस देश से मानवता की अर्थी उठ चुकी है और इसके बाद किसी सुधार की कोई संभावना बाक़ी नहीं रही। ऐसी हालत में सिवाय इसके कि इस देश में इनसानियत का अंतिम क्रिया-कर्म (अन्त्येष्टि) कर दिया जाए, कोई दूसरा रास्ता नज़र नहीं आता। लेकिन देश के हालात बताते हैं कि ऐसा बिलकुल नहीं है। इस देश की आम जनता सदैव से सीधी-सादी और धार्मिक स्वभाव की रही है। इसलिए हमेशा कुछ चालाक लोगों ने इसकी धार्मिक भावनाओं को भड़काकर

इसका शोषण किया है। आज भी देश में धार्मिक उन्माद का रेला, धार्मिक भावावेशों का तूफ़ान और उसे पैदा करनेवाली नित नई आवाज़ों, नारों और आन्दोलनों की पैदाइश इस बात की निशानी है कि देश की अधिकांश जनसंख्या इन हालात से सन्तुष्ट नहीं है। इसलिए ये चालाक लोग उसका ध्यान असल समस्या से हटाने के लिए काल्पनिक समस्याएँ, काल्पनिक भय और मुस्लिम पर्सनल लॉ का हव्वा खड़ा करके असल समस्याओं को नज़रों से दूर हटाना चाहते हैं।

पुनरुत्थानवादी गिरोह

अब सवाल पैदा होता है कि अगर पूरा हिन्दू समाज देश के बिगड़ते हुए हालात और हिन्दू समाज में फैलनेवाले इन यौन अपराधों और औरत के शारीरिक शोषण से सन्तुष्ट नहीं है तो आख़िर वह कौन-सा गिरोह है जो हिन्दू समाज को इस पस्ती की ओर ले जाने में रुचि ले रहा है और प्राचीन भारतीय सभ्यता के पुनरुत्थान के नाम पर अपना मैदान बनाने में लगा हुआ है ?

इस मसले की खोज करने से पहले इस बात को तो बहरहाल नज़र में रखना ही चाहिए और देश के मौजूदा हालात इसकी गवाही भी देते हैं कि इस पुनरुत्थानवाद की पीठ पर धार्मिक निष्ठा के नाम की कोई चीज़ नहीं है। अगर इसके पीछे हिन्दू धर्म की सेवा करने की भावना होती तो प्रथम तो इस पुनरुत्थानवाद के लिए राजनीतिक नारों का सहारा न लिया गया होता, बल्कि हिन्दू धर्म के गुणों का वर्णन करने और हिन्दू धर्म का प्रचार करने की रीति अपनाई गई होती। दूसरे ऐसी दशा में कार्य-विधि यह होती कि हिन्दू-धर्म के माननेवालों को अधिक से अधिक धर्म से जोड़ने और उसपर अमल कराने की ओर ध्यान दिया जाता और देश में ईश्वर-भक्ति, मानवता की सेवा, आध्यात्मिक पवित्रता, समर्पण की भावना और दूसरों का दिल जीत लेने की कोशिश की गई होती। दुनिया में किसी भी धर्म का प्रचार ज़ुल्म व अत्याचार और घृणा का माहौल पैदा करके कभी नहीं किया गया। सब धर्म ईश्वर-भक्ति का प्रचार अपने-अपने ढंग से करते हैं और इसी ईश्वर-भक्ति के अन्तर्गत मानवता की सेवा करने, दूसरों की सेवा करने के लिए कष्ट उठाने

और दूसरों की भलाई के लिए क़ुरबानियाँ देने की प्रशंसा करते हैं। मगर इस देश में हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान के नाम पर अत्याचार व अनाचार, शोषण, दंगे, लूट-मार, क़त्ल और ग़ारतगरी का बाज़ार गर्म होता है और यह सब धर्म के नाम पर किया जाता है। देश के ये हालात इस बात की निशानी हैं कि पुनरुत्थानवाद की पीठ पर कोई धार्मिक सद्भावना कार्यरत नहीं है, बल्कि इस शोर और हंगामे से कुछ और ही लाभ उठाना अभीष्ट है और उनके प्रेरक भी वही दूसरे अधार्मिक लक्ष्य हैं। यह वास्तविकता इतनी स्पष्ट और अकाट्य है कि अब समझदार और परिपक्व मस्तिष्क हिन्दू भी इस हक़ीक़त तक पहुँच गए हैं और धर्म के नाम पर की जा रही इस धोखेबाज़ी से हिन्दू जाति को सावधान करने लगे हैं। अत: एक धार्मिक लेखक लिखता है –

> "It is also pertinent to point out that a majority of even those who are described as Hindu Communalists are communalists in a political sense since they are not necesssarily committed to the propagation of Hindu religion."
>
> – Illustrated Weekly of India, 15-6-1980

> ''यह संकेत कर देना भी उचित है कि इन लोगों में से अधिकांश भी जिन्हें हिन्दू साम्प्रदायिक कहा जाता है, वे राजनीतिक अर्थों में ही साम्प्रदायिक हैं, क्योंकि वे आवश्यक रूप से हिन्दू धर्म के प्रचार के पाबन्द नहीं हैं।''
>
> – इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, 15 जून, 1980 ई०

इस उद्धरण से मालूम होता है कि इस पुनरुत्थानवाद का लक्ष्य हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान या उसका विस्तार या प्रचार, कुछ नहीं है, बल्कि केवल राजनीतिक लाभ प्राप्त करने हैं, जिनके लिए धर्म और धार्मिक भावनाओं का शोषण किया जा रहा है। इससे यह भी मालूम होता है कि यह जो कुछ देश में हो रहा है, केवल राजनीतिक स्वार्थ प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है, अर्थात इसके पीछे राजनेताओं और राजनीतिक पार्टियों का हाथ है। मगर हालात का अध्ययन बता रहा है कि यह भी केवल एक धोखा खा जाने का नतीजा है। अगर इन पुनरुत्थानवादियों की दृष्टि में केवल राजनीतिक स्वार्थ होते तो इसके लिए सिर्फ़ इतनी बात काफ़ी

थी कि राजनीतिक पार्टियाँ अपनी लोकप्रियता बढ़ाने की कोशिशें करतीं, इसलिए कि इस देश की सरकार धर्म निर्पेक्ष (Secular) है, इसी कारण राजनीतिक दल भी धर्म की बुनियाद पर नहीं, बल्कि धर्म निर्पेक्षता (Secularism) की बुनियाद पर गठित होते हैं। अगर यह मान भी लिया जाए कि कोई दल अपने धर्म निर्पेक्ष (Secular) लक्ष्य के लिए धर्म और धार्मिक भावनाओं का भी प्रयोग करना चाहता हो और इसके लिए हिन्दू धर्म माननेवालों के वोटों को अपने लिए ख़ास करना चाहता हो तो उसके लिए यह बात काफ़ी है कि वह धर्म के नाम पर हिन्दू जाति को संगठित व अनुशासित करके उनमें अपना प्रभाव बढ़ा ले। मगर आज़ादी के बाद पुनरुत्थानवाद की उन्नति के साथ हिन्दू जाति में यौन सम्बन्धी उच्छृंखलता और औरत के शारीरिक शोषण के जिस बढ़ते हुए रुझान का पता चलता है उससे इस मत की भी पुष्टि नहीं होती। इसके बावजूद आसानी से इस राय को ग़लत भी नहीं कहा जा सकता। वास्तविकता यह है कि राजनीतिक लाभों की यह प्राप्ति भी लक्ष्य नहीं है, बल्कि केवल एक साधन है। असल उद्देश्य उच्छृंखलता और रसास्वादन की भावना में छिपा दिखाई देता है जिसके लिए न केवल धर्म को, बल्कि राजनीति और संख्यात्मक वर्चस्व को भी प्रयोग किया जा रहा है।

हिन्दू पुनरुत्थानवादियों का मक़सद अगर वास्तव में हिन्दू धर्म का प्रचार और उत्थान होता तो वे श्री कृष्ण जी की निम्न शिक्षाओं पर अवश्य ध्यान देते –

> "मुझमें श्रद्धा रखनेवाला, जो किसी जानदार को कष्ट नहीं पहुँचाता, जो शुद्ध हृदय, दयालु, निष्पक्ष, गर्व न करनेवाला, सुख-दुख में एक रस, क्षमा करनेवाला, सदा सन्तुष्ट, अनुकूल, अपने आप पर क़ाबू रखनेवाला, मानसिक और बौद्धिक शक्तियोंवाला, जो मुझे समर्पित हो चुका हो, मुझे बहुत प्रिय है।"
>
> (गीता 12:13,14)
>
> "वह, जिससे दुनिया नहीं घबराती और जो दुनिया से नहीं घबराता और जो ख़ुशी, क्रोध, डर और दुख की भावनाओं से स्वतंत्र है, मुझे प्रिय है।"
>
> (गीता 12:15)
>
> "मेरा श्रद्धालु, जो किसी वस्तु को नहीं माँगता, पवित्र, योग्य, भावनाओं से

स्वतंत्र, दृढ़ हृदयवाला और हर काम के फल से विमुक्त रहनेवाला है, मुझे प्रिय है।'' (गीता 12:16)

''वह श्रद्धालु, जो न प्रेम करता है, न घृणा, न इच्छा करता है न दुख, जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है, मुझे प्रिय है।'' (गीता 12:17)

''जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान, गर्मी व सर्दी, सुख व दुख में सम हो, जो लगाव, प्रशंसा और दण्ड का समान प्रभाव ग्रहण करनेवाला हो, शान्त, हर स्थिति में सन्तुष्ट, बेघर, स्थिर बुद्धि और श्रद्धा से परिपूर्ण हो, वह मुझे प्रिय है।''

(गीता 12:18-19)

''जो श्रद्धालु मुझे अन्तिम लक्ष्य मानकर ऊपर बताए गए धर्म के अमृत से लाभान्वित होते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।'' (गीता 12:20)

अगर पुनरुत्थान का यह आन्दोलन ऐसे लोगों के हाथों में होता जो सद्‌भावना के साथ हिन्दू धर्म की सेवा करना चाहते होते तो फिर इस पुनरुत्थानवादी आन्दोलन की दिशा वह होती जो कृष्ण जी के उपरोक्त श्लोकों में बताई गई है। अगर इन उसूलों को अपनाया गया होता तो न केवल हिन्दू औरत शोषण से बहुत बड़ी सीमा तक सुरक्षित हो जाती, बल्कि देश के किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय को किसी तरह का कोई ख़तरा भी महसूस न होता। मगर इससे इन तथाकथित पुनरुत्थानवादियों के लिए उपयुक्त माहौल पैदा नहीं हो सकता था।

हिन्दू जनसाधारण की नैतिक स्थिति

जहाँ तक हिन्दू जाति का सम्बन्ध है, आज भी यह यौन-पथभ्रष्टता उसके एक बहुत ही छोटे से वर्ग में पैदा हो सकी है, अन्यथा साधारण हिन्दू आज भी नैतिकता के काफ़ी ऊँचे स्तर पर विद्यमान दिखाई देता है। आज भी उसके दिल में औरत के प्रति आदर की भावना मौजूद है, आज भी वह उसके शील एवं सतीत्व को आदरणीय समझता है, आज भी वह व्यभिचारी को गिरी हुई नज़रों से देखता है और आज भी वह आज़ाद यौन-सम्बन्ध से घृणा करता है। इसके बावजूद हिन्दू जाति में धर्म के नाम पर कामोत्तेजनापूर्ण माहौल तेज़ी से बढ़ता चला जा रहा है और औरत यौन-शोषण के ख़तरों में घिरती चली जा रही है। ऐसी सूरत में ज़रूरी

जान पड़ता है कि उस गिरोह का पता लगाया जाए जो इस देश में औरत (हिन्दू व मुसलमान दोनों) के यौन-शोषण के पीछे पड़ा हुआ है। इस गिरोह ने राजनीति के पर्दे में कहीं मुँह छिपा रखा है, इसलिए जो लोग इन हालात से परेशान हैं उनकी दृष्टि राजनीति पर जाकर रुक जाती है और वे देश की राजनीति को इसका ज़िम्मेदार ठहराकर संतुष्ट हो जाते हैं। मगर आवश्यकता है कि इस गिरोह के गुप्त ठिकानों का पता लगाकर इसकी निशानदेही की जाए। यह न केवल मुस्लिम समाज को तबाही से बचाने के लिए ज़रूरी हो गया है, बल्कि स्वयं इस देश की हिन्दू औरत और हिन्दू-जाति को यौन-शोषण की लानत में फँस जाने से बचाने के लिए भी ज़रूरी है। इसलिए कि हिन्दू जाति इस देश में बहुसंख्यक जाति है, इसका नैतिक दिवालापन, पथ भ्रष्टता और यौन-सम्बन्धों में फँसकर विनाश के कगार पर जा खड़ा होना न केवल हिन्दू जाति की बरबादी है, बल्कि इससे पूरे देश की तबाही के ख़तरे पैदा हो जाएँगे। और फिर देश के बहुसंख्यक समाज की तबाही से होनेवाला देश का विनाश मुस्लिम समाज के विनाश का कारण भी सिद्ध होगा। इसलिए कि इस देश की भलाई मुस्लिम समाज की भलाई है और इसका विनाश उसका भी विनाश है। इसके बाद मुस्लिम पर्सनल लॉ की रक्षा भी मुस्लिम समाज को विनाश से बचाने में सफ़ल हो सकती है। ऐसी दशा में मुसलमानों की नैतिक, मानवीय, राष्ट्रीय और दीनी ज़िम्मेदारी है कि अगर देश की बहुसंख्या किसी वजह से वास्तविकता तक पहुँचने में सफल नहीं हो रही है तो वे स्वयं आगे बढ़ें और सद्भावना, हमदर्दी और प्रेम के साथ देश का पथ-प्रदर्शन करें और माहिर विश्लेषक की हैसियत से उस स्रोत का पता लगाएँ जहाँ से यह विष फूट रहा है।

पर्सनल लॉ में परिवर्तन का वास्तविक उद्देश्य

अपने लिए नया उपयुक्त माहौल पैदा करने के लिए तथाकथित पुनरुत्थान-वादियों ने पुनरुत्थान आन्दोलन को वह दिशा दी जिसके कारण हिन्दू समाज बड़ी तेज़ी से यौन-संभोगवाद और लैंगिक स्वच्छन्दता की ओर बढ़ता चला जा रहा है। मगर शायद परिवर्तन की इस गति से पुनरुत्थानवादी सन्तुष्ट नहीं हैं, इसलिए कि

देश में मुस्लिम समाज भी मौजूद है। पुनरुत्थानवाद के इन प्रभावों से मुसलमान औरत पूरी तरह सुरक्षित है और इसलिए एक आम पढ़े-लिखे बुद्धिशील हिन्दू के लिए यह एक बड़ा प्रश्न चिह्न बनकर सामने आ जाता है कि एक ही देश में रहने के बाद भी हिन्दू और मुसलमान औरत के शोषण में यह अन्तर क्यों है। इस एहसास से उसमें बेइतमीनानी पैदा है और पुनरुत्थानवादी उसके सहयोग से वंचित रह जाते हैं। इसलिए ज़रूरी समझा जा रहा है कि भारत से मुस्लिम समाज को ही समाप्त कर दिया जाए, ताकि तुलना करने की कोई सम्भावना ही न रहे। मुस्लिम समाज का गठन चूँकि मुस्लिम पर्सनल ल़ॉ की बुनियाद पर होता है, इसलिए जब तक उसको नहीं बदला जाएगा, मुस्लिम समाज की विशिष्ट पहचान को समाप्त करना मुमकिन नहीं होगा। इसलिए पहले यह निश्चित किया गया कि मुस्लिम पर्सनल लॉ को परिवर्तित कराना है, इसके बाद उसके विरुद्ध अनेक बहाने तलाश करने की कोशिशें की गईं। अर्थात् बात यह नहीं है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ औरत पर ज़ुल्म करता है इसलिए उसे परिवर्तित करना चाहिए, बल्कि चूँकि उसे बदलना है इसलिए बदलने के कुतर्क और बहाने तराशे जाने लगे हैं।

मुस्लिम पर्सनल लॉ पर एतिराज़ात

इस देश में मुस्लिम पर्सनल लॉ को परिवर्तित कराने के लिए समय-समय पर जो एतिराज़ात किए जाते हैं वे संक्षेप में निम्नलिखित हैं। इन एतिराज़ात के सिलसिले में बहस करते वक़्त ज़रूरी मालूम होता है कि इस सम्बन्ध में यूरोप के दृष्टिकोण के साथ-साथ हिन्दू धर्म के दृष्टिकोण का भी अध्ययन कर लिया जाए और फिर उन कारणों और मस्लहतों पर दृष्टि डाली जाए जिनको ध्यान में रखकर इस्लाम ने अपना दृष्टिकोण निश्चित किया है।

मुस्लिम पर्सनल लॉ पर एतिराज़ात

मुस्लिम पर्सनल लॉ पर, उसे परिवर्तित कराने की माँग के साथ जो एतिराज़ किए जाते हैं या किए जाते रहे हैं वे ये हैं –

(1) यह क़ानून एक से ज़्यादा पत्नियों की इजाज़त देता है।

(2) यह क़ानून मर्द को तलाक़ का हक़ देता है जबकि तलाक़ का समान अधिकार औरत को नहीं देता।

(3) विरासत के बँटवारे में औरत को मर्द की तुलना में आधे हिस्से का हक़दार क़रार देता है।

(4) गवाही में दो औरतों को एक मर्द के बराबर मानता है।

(5) यह क़ानून लिंग-भेद की पॉलिसी अपनाता है।

उपर्युक्त एतिराज़ात ऊपर से देखने पर बड़े वज़नदार जान पड़ते हैं। मगर ज़रा-सा ध्यान देने पर इनकी हक़ीक़त खुल जाती है और मालूम हो जाता है कि ये एतिराज़ात अपनी प्रकृति में बड़े खोखले और बेवज़न हैं।

जब ये एतिराज़ात (आक्षेप) सामने लाए जाते हैं तो मुसलमानों की तरफ़ से फ़ौरन सफ़ाइयाँ शुरू हो जाती हैं और ख़ुदा व रसूल और क़ुरआन व सुन्नत के हवाले शुरू हो जाते हैं। मानो आक्षेप उठानेवाले संजीदगी से औरत के दुखों से प्रभावित होकर आक्षेप उठा रहे हैं। मगर चूँकि आक्षेपकर्ताओं के सामने असल मक़सद भारत से मुस्लिम समाज की अलग पहचान को समाप्त करना है, क्योंकि इसका जीवित और विद्यमान रहना उनके लक्ष्यों के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट बना हुआ है, इसलिए जवाब कोई नहीं सुनता और एतिराज़ बराबर दोहराया जाता रहता है।

इन एतिराज़ात पर ग़ौर करके इनका वज़न और हक़ीक़त मालूम करने से पहले इस बात पर विचार कर लिया जाए कि ख़ुद आक्षेपकर्ता की अपनी मजबूरी क्या है। जहाँ तक इन एतिराज़ात के जवाब का सम्बन्ध है, इसका सम्बोधन हिन्दू जाति के आम व्यक्तियों के वर्ग से है जिसमें वास्तविकता की पहचान करने की योग्यता और सत्य को स्वीकार करने की भावना अब भी मौजूद है। रहे वे लोग जो एक विशिष्ट लक्ष्य प्राप्त करने के लिए परिवर्तन का यह शोर मचा रहे हैं, तो न वे लोग यहाँ सम्बोधित हैं और न उनसे किसी भलाई की आशा करना बुद्धिमत्ता मालूम होती है।

पिछले पृष्ठों में प्राचीन हिन्दू समाज में औरत की बदलती हुई हैसियत का विश्लेषण किया जा चुका है जिससे मालूम होता है कि हिन्दू धर्म में औरत की किसी विशेष सामाजिक हैसियत का कोई वुजूद नहीं रहा है, बल्कि हालात और आवश्यकतानुसार उसकी हैसियत बदलती रही है। उसका हर स्तर पर शारीरिक शोषण होता रहा है और इतिहास के विभिन्न युगों में धार्मिक और राजनीतिक लक्ष्यों के अन्तर्गत उसकी हैसियत निश्चित होती रही है। ऐसी सूरत में एक साधारण हिन्दू यह समझने में असमर्थ है कि ख़ानदानी जीवन के लिए भी धर्म कोई ऐसा नियम बनाता है जो किसी भी दशा में अपरिवर्तनीय हो। इसलिए कि उनके समाज में प्राय: यह परिवर्तन होता रहा है और वर्तमान युग में भी हिन्दू कोड बिल बनाकर परिवर्तन किया जा चुका है। ऐसी स्थिति में वह समझता है कि ख़ानदानी

नियम भी शासन के अन्य नियमों की तरह ही होते हैं, जिन्हें पार्लियामेन्ट पास करके लागू कर देती है और जब भी शासन चाहे इनमें परिवर्तन हो सकता है। उसके अनुसार इस क़ानून का स्रोत धर्म और उसके आदेश नहीं, बल्कि रस्म व रिवाज, अनुभव व अध्ययन और प्राचीन रिवाज होते हैं। अत: वह मुस्लिम पर्सनल लॉ के बारे में भी यही समझता है और इसलिए जब उसमें परिवर्तन की माँग की जाती है तो वह माँग के लक्ष्यों पर विचार किए बिना उसका समर्थन शुरू कर देता है, और जब मुसलमान उसका विरोध करते हैं तो उसे समझा दिया जाता है कि यह हिन्दू-दुश्मनी और धार्मिक संकीर्णता की वजह से किया जा रहा है। इसके अलावा हिन्दू जाति के अधिकांश लोगों को तो यह मालूम भी नहीं है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ नाम का कोई अलग क़ानून भी देश में लागू है। ये माँग केवल मुट्ठीभर लोगों की ओर से बार-बार की जाती रहती है और प्रचार माध्यमों द्वारा उसे यह अर्थ देने का प्रयत्न किया जाता है कि पूरी हिन्दू जाति का समर्थन इस माँग को प्राप्त है। ऐसी स्थिति में ज़रूरी हो जाता है कि हिन्दू जाति को माँग के असल मक़सद की जानकारी दी जाए और उसे यह भी बता दिया जाए कि इस माँग का मक़सद क्या है और इसके पीछे कौन लोग हैं, और यह भी कि वे देश को किधर ले जाना चाहते हैं, ताकि जिसे इसका पक्ष करना हो सोच-समझकर करे और समाज को जहाँ ले जाना चाहे सोच-समझकर ले जाए। इसी के साथ उसे यह भी विश्वास दिला दिया जाए कि मुसलमानों का पर्सनल लॉ संसार का वह अकेला क़ानून है जो गत चौदह सौ साल से अनवरत रूप में चला आ रहा है। आज तक इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया। सारी दुनिया में यह इसी तरह लागू है और आइन्दा भी इसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं होगा। इसका कारण मुसलमानों की ज़िद या हिन्दू जाति की दुश्मनी और घृणा नहीं है, बल्कि यह है कि इस क़ानून का निर्माता ख़ुदा है और दुनिया का माना हुआ क़ानूनी उसूल है कि किसी क़ानून में संशोधन उसका बनानेवाला ही कर सकता है। इसलिए अगर दुनिया के सारे मुसलमान भी चाहें तो सब एकमत होकर भी इसमें परिवर्तन नहीं कर सकते। रही हमारी पार्लियामेंट, तो उसने इस क़ानून को बनाया नहीं है, बल्कि केवल उसका अनुमोदन किया है।

इसलिए उसे यह हक़ हासिल नहीं है कि उसमें किसी क़िस्म की तब्दीली कर सके। ऐसी स्थिति में उनकी यह माँग एक व्यर्थ कार्य से ज़्यादा हैसियत नहीं रखती।

जहाँ तक मुस्लिम पर्सनल लॉ पर उपरोक्त एतिराज़ात का सम्बन्ध है, उनका जायज़ा लेने के बाद मालूम होता है कि ये एतिराज़ात बेवज़न और निरर्थक हैं।

(1) एक से अधिक पत्नियाँ

मुस्लिम पर्सनल लॉ पर सबसे बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि उसने एक समय में चार पत्नियाँ तक रखने की इजाज़त देकर औरत पर बहुत बड़ा ज़ुल्म किया है। मुसलमान आम तौर पर इस आक्षेप के उत्तर में इस इजाज़त के लाभ गिनवाते हैं, जबकि आक्षेपकर्ता समझने के लिए नहीं बल्कि 'आक्षेप, आक्षेप के लिए' की नीति पर चल रहे हैं। यह एतिराज़ अपने स्वरूप के अनुसार कोई नया और अनोखा नहीं है, बल्कि आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व से पाश्चात्य लेखक इस एतिराज़ को उठाते रहे हैं और भारत में आज़ादी के बाद से वही टेप बजाया जा रहा है। मुसलमानों की ओर से इसके अनेक बार उत्तर दिए जा चुके हैं, जो इतने प्रामाणिक और स्पष्ट हैं कि अब पाश्चात्य विद्वानों के मुँह तो बन्द हो चुके हैं, मगर चूँकि टेप की केवल जीभ होती है, मस्तिष्क नहीं, इसलिए वह बेसोचे-समझे बजता रहता है, केवल इसलिए कि मुस्लिम पर्सनल लॉ पर एतिराज़ करना है। अगर ऐसी बात न होती तो फिर यह कैसे संभव था कि इस एतिराज़ को उस गिरोह की तरफ़ से दोहराया जाता जो भारत में प्राचीन संस्कृति के पुनरुत्थान का झण्डा खड़ा किए हुए है। क्या यह समझा जा सकता है कि वह प्राचीन संस्कृति को समझे बिना ही उसके पुनरुत्थान का नारा लगा रहा है? क्या इस गिरोह को नहीं मालूम कि भारतीय संस्कृति में बहुपत्नी प्रथा मौजूद थी? अगर मालूम नहीं है और इसके बावजूद पुनरुत्थान की माँग की जा रही है तो फिर किसी क़ौम के ऐसे नेतृत्व का ईश्वर ही मालिक है। बहरहाल अगर उसे मालूम नहीं है तो उसे चाहिए कि वह वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों और रामायण एवं महाभारत का अध्ययन करे।

वैदिक युग के ब्राह्मणों में भी बहुपत्नी प्रथा थी। च्वयन ऋषि की अनेक

पत्नियों का वर्णन ऋग्वेद (1-116-10) में किया गया है। सोमरी ऋषि द्वारा त्रसदस्यु, पुरुकुत्स की पचास पुत्रियों के साथ विवाह का वर्णन भी ऋग्वेद (8-19-36) में स्पष्ट रूप में मिलता है। महर्षि याज्ञवलक्य की दो पत्नियों कल्याणी और मैत्रेयी का विस्तृत वर्णन बृहदारण्यक (5/5) में किया गया है।

फिर यह बात प्रसिद्ध है कि इन्द्र की अपनी रानियों के अलावा उनके यहाँ हज़ारों दासियाँ और नर्तकियाँ भी थीं। इनके अलावा भी वे सुन्दरियों की खोज में रहते थे, जिसका वर्णन रामायण में मौजूद है।

महाभारत के मौसल पर्व से ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण जी की मृत्यु के पश्चात् उनकी विधवा पत्नियों की संख्या 16000 थी।

युधिष्ठिर, जिनको धर्मराज भी कहा जाता है, के पास हज़ारों दासियाँ मौजूद थीं।

ख़ुद रामचन्द्र जी के पिता राजा दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं, यह भी सबको मालूम है।

फिर प्राचीन हिन्दू संस्कृति में नियोग की रीति भी मौजूद थी जिसके अनुसार कोई भी विधवा किसी भी मर्द के साथ, उसकी पत्नी के अतिरिक्त, पत्नी बनकर रह सकती थी।

आश्चर्यजनक बात है कि हिन्दू धर्म की धार्मिक पुस्तकों में इतने स्पष्ट रूप में बहु-पत्नी प्रथा का वर्णन होने के बाद देश में प्राचीन सभ्यता का पुनरुत्थान करनेवाले इस्लाम में चार बीवियों की इजाज़त पर किस तर्क से इतना शोर मचाने में लगे हुए हैं। यह आक्षेप करने से पहले उन्हें चाहिए कि वे पहले इतनी अधिक पत्नियाँ रखनेवालों को ऋषि, मुनि, अवतार और भगवान मानने से इनकार करके उनसे कोई सम्बन्ध न होने का एलान करें, तभी यह आक्षेप उनके द्वारा भला लगेगा। अपने गरेबान को देखे बिना दूसरे के गरेबान पर हाथ डालना किसी भी प्रकार बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती।

इन परिस्थितियों के होते हुए अगर इस्लाम ने अधिक से अधिक चार बीवियाँ,

सबके साथ न्याय करने की शर्त के साथ, रखने की इजाज़त दी है तो इसमे आपत्तिजनक क्या है जिसपर इतना शोर मचाया जा रहा है और मुस्लिम पर्सनल लॉ को बदलने के लिए इसे उस क़ानून का बहुत बड़ा अपराध क़रार दिया जा रह है।

भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ में दी गई चार बीवियों की इजाज़त पर पाबन्द लगाने की माँग इस देश की हिन्दू क़ौम के लोगों की ओर से की जा रही है, जे मिथ्या दावा करते नहीं अघाते कि उनके यहाँ धर्मतः केवल 'एक पत्नी' रखने की ही इजाज़त है। इस माँग का यह अर्थ होता है कि इस प्रकार की माँग करनेवाले हमारे हिन्दू भाइयों को न अपने धर्म का ज्ञान है, न परम्परा का पता है। और यदि है तो अपनी धार्मिक परम्पराओं एवं ज्ञान को छिपाकर अन्य धर्मों पर आक्षेप करने की खुली छूट चाहते हैं।[1] अगर इस देश में इस प्रकार की माँगों को प्रोत्साहन दिय जाने लगा तो यहाँ क्या स्थिति पैदा होगी, ख़ुदा ही बेहतर जानता है। हाँ, यह बात ज़रूर कही जा सकती है कि यह देश धार्मिक बहसों, माँगों और लड़ाइयों क अखाड़ा बनकर रह जाएगा और सेक्युलरिज़्म (धर्मनिर्पेक्षता) की अर्थी बड़ी दयनीय दशा में यहाँ से उठ जाएगी।

जहाँ तक एक से अधिक पत्नी का सम्बन्ध है, मानवजाति की सभ्यता के इतिहास का अध्ययन बताता है कि मर्दों ने अपनी तारीख़ में हमेशा एक से ज़्याद बीवियों को रखा है, और जहाँ कहीं भी इसपर पाबन्दी लगाकर उसे केवल एक बीवी रखने पर मजबूर किया गया है, वहाँ बहुत शीघ्र रखैलें, स्वतन्त्र शारीरिक सम्बन्ध, ज़िना (व्यभिचार), बलात्कार, अपहरण और औरत के शारीरिक शोषण ने संक्रामक रोग का रूप धारण कर लिया है और समाज में नैतिक और यौन सम्बन्धी अपराधों में भारी वृद्धि हुई है तथा समाज उच्छृंखलता के मार्ग पर चल पड़ा है। प्राचीन व नवीन भारत का जायज़ा गुज़र चुका है। प्राचीन यूरोप इतिहास के पन्नों पर सुरक्षित है और नवीन यूरोप हमारी नज़रों के सामने आज भी इस सत्य पर मुहर लगा रहा है। इससे मालूम होता है कि समाज की ख़ुशहाली और शान्ति

1. इस सम्बन्ध में देखें पुस्तक 'हिन्दू धर्मशास्त्रों में बहुपत्नी प्रथा'।

के लिए 'एक पत्नी प्रथा' की नहीं, बल्कि 'बहु-पत्नी' प्रथा की इजाज़त आवश्यक चीज़ है और इस्लाम इसकी इजाज़त देता है।

हिन्दुस्तान में बहुविवाह को बहुत ही अप्रिय समझा जाता है, इसलिए कि इस देश में हिन्दू धर्म के माननेवाले बहुसंख्यक हैं। इनके रहन-सहन से मुसलमान भी प्रभावित हुए हैं और उनकी राय पर भी किसी हद तक इनका प्रभाव पड़ा है। जहाँ तक हिन्दू धर्म में स्त्री के महत्त्व का सम्बन्ध है, उसके अनुसार औरत दान करने की वस्तु है। इसलिए विवाह के अवसर पर 'कन्यादान' किया जाता है। इस रीति के नाम ही से मालूम होता है कि दान करने की क्रिया केवल कन्या ही के साथ की जा सकती है। मगर दूसरी वे औरतें जो कन्या नहीं रही हैं, उनके लिए इस रीति को अदा नहीं किया जा सकता। फिर जैसा कि मनु जी ने अपने धर्म शास्त्र में कहा है कि जिस तरह किसी वस्तु का दान केवल एक बार ही किया जा सकता है, उसी तरह कन्या का दान भी केवल एक ही बार किया जा सकता है। ऐसी हालत में वे औरतें जो दुर्भाग्यवश जवानी में ही विधवा हो जाती हैं और सती होने के लिए भी तैयार नहीं होतीं, हिन्दू धर्म उनको दूसरा विवाह करने की इजाज़त किसी दशा में भी नहीं देता। ऐसी औरतें अगर अपनी इच्छा के अनुसार या वैधव्य से उकताकर या बुढ़ापे की उम्र को ध्यान में रखकर अपनी ज़िन्दगी के लिए किसी मर्द का सहारा तलाश करती हैं और किसी मर्द को अपने साथ रखने पर आमादा करने में कामयाब हो जाती हैं तो हिन्दू धर्म ऐसी औरतों के कृत्य को धर्म-विरुद्ध कहता है। अब उनके लिए एक ही रास्ता रह जता है कि वे बिना किसी पुरुष से शादी-विवाह के ही उसके साथ रहने लगें। चूँकि इस प्रकार किसी के साथ रहनेवाली औरत की कोई क़ानूनी या धार्मिक हैसियत नहीं होती और न उसके अधिकार निश्चित होते हैं, इसलिए उसके सिर पर हमेशा यह भय सवार रहता है कि पता नहीं कब उसका यह मर्द अपनी पत्नी की बातों में आकर या उसके किसी काम से नाराज़ होकर उसे घर से निकाल दे और उसके बाद वह कहीं की न रहे। इसलिए ऐसी औरत उस नए घर में जाने के साथ ही अपने मर्द की भरपूर सेवा और उसकी इताअत उसकी अपनी बीवी से बढ़-चढ़कर करने लगती है। उसकी पहली बीवी उसकी इन

हरकतों को पसन्द नहीं करती। वह ख़ुद ब्याहता बीवी होने के नशे में मस्त होती है और इस दूसरी बीवी को स्वयं से तुच्छ समझती है। ऐसी दशा में उसकी यह सेवा और आज्ञाकारिता उसे अपने लिए ख़तरा नज़र आने लगती है। फिर इन दोनों में खींच-तान शुरू हो जाती है। इस खींच-तान में अधिकतर पहली बीवी को ही नुक़सान उठाना पड़ता है। क्योंकि दूसरी औरत अपनी आज्ञाकारिता और सेवा से मर्द का दिल जीत चुकी होती है। और नतीजा यह होता है कि पति पहली बीवी को नज़र-अन्दाज़ कर देता है और मामला ज़्यादा बढ़ जाने की दशा में घर से निकाल भी देता है। इसी वजह से हिन्दू औरत सौत की कल्पना से ही काँप जाती है। वह पति के दबाव और मजबूरी के आगे झुक तो जाती है, मगर दिल से उसे कभी क़बूल नहीं करती।

इसकी तुलना में इस्लाम जहाँ चार शादियों की इजाज़त देता है, वहीं वह निकाह के अलावा यौन-सम्बन्ध की किसी दूसरी शक्ल की किसी भी क़ीमत पर इजाज़त नहीं देता। कोई औरत मर्द के जीवन के क़िले में निकाह के मुख्य द्वार के अलावा किसी चोर दरवाज़े से प्रवेश ही नहीं कर सकती। इसलिए निकाह के साथ ही उसके क़ानूनी, धार्मिक और नैतिक अधिकार बराबरी के अनुपात में निश्चित हो जाते हैं और इसलिए वह असाधारण सेवा या आज्ञाकारिता द्वारा पहली बीवी को निकालने की कोशिश नहीं करती। एक से अधिक बीवियाँ हिन्दू समाज में पहली पत्नी के लिए जिस तरह की समस्याएँ खड़ी कर देती हैं, मुस्लिम समाज में इसकी कोई संभावना नहीं होती। इसलिए अगर एक से ज़्यादा बीवियाँ हिन्दू समाज में समस्याएँ पैदा करने की वजह बनती हैं तो इस बुनियाद पर इस्लाम की इस इजाज़त पर उन्हें एतिराज़ करने का न तो कोई हक़ पहुँचता है और न इसमें कोई औचित्य है। लेकिन आश्चर्य है कि देश की अनेक सर्वे रिपोर्टों के अनुसार बहुपत्नी प्रथा का रिवाज भारत में मुसलमानों से कहीं अधिक हिन्दू जाति में मौजूद है जो शायद प्रतिबन्ध प्रतिक्रिया का फल है। इसलिए बिना सोचे-समझे यूरोप का टेप बजाते रहने से न तो कोई लाभ ही है और न बुद्धिमत्ता ही—काँच के घर में रहनेवालों को अपने घर की अधिक चिन्ता होनी चाहिए।

इन हालात में कभी-कभी सन्देह होने लगता है कि कहीं पुनरुत्थानवादियों की दृष्टि में इस हंगामे का कोई विशिष्ट अभिप्राय न हो जिसकी वजह से यह हक़ीक़त तो नज़रों से छिपा दी जाती है कि इजाज़त न होने के बावुजूद हिन्दू जाति में बहुपत्नी प्रथा पर जिस तरह अमल किया जा रहा है, इजाज़त होने पर भी मुसलमान उसपर उसी तरह अमल नहीं कर रहे हैं, और मुस्लिम पर्सनल लॉ में बहुपत्नी प्रथा की इजाज़त पर लगातार शोर मचाया जाता रहता है। शायद इसकी वजह यह भय हो कि कहीं देश के मौजूदा हालात से मजबूर होकर मुसलमान यह निश्चित न कर लें कि इनमें से हर व्यक्ति आवश्यक रूप से चार बीवियाँ रखकर उनसे अधिक से अधिक सन्तान पैदा करने लगें और इस तरह देश की आबादी के अनुपात में फ़र्क़ पैदा हो जाए। इस सन्देह को उन बयानों से और भी बल मिलता है जो कुछ वर्षों पूर्व मीनाक्षीपुरम में कुछ हरिजनों के इस्लाम क़बूल करने पर प्रतिक्रिया स्वरूप दिए गए थे, जिनमें कहा गया था कि यह धर्म-परिवर्तन हिन्दू जाति के विरुद्ध एक षड्यन्त्र है ताकि इस देश की आबादी के अनुपात और सन्तुलन को बदल दिया जाए। इसकी पुष्टि उन बयानों से भी होती है जिनके अनुसार धर्म-परिवर्तन करनेवाले हरिजनों को सलाह दी गई थी कि वे चाहें तो बौद्ध धर्म स्वीकार कर लें, किन्तु मुसलमान न हों। अगर यह सन्देह सही है तो उन लोगों को मालूम होना चाहिए कि मुसलमान किसी षड्यन्त्रकारी संप्रदाय का नाम नहीं है। जब उन्होंने यह कृत्य अपने लम्बे शासन काल में नहीं अपनाया, जब इस देश में उनपर एतिराज़ करनेवाला कोई नहीं था, तो वे इसपर अब क्या अमल करेंगे! मुस्लिम पर्सनल लॉ और इस्लाम में असंख्य निहित हितों के कारण यह इजाज़त दी गई है। यह कोई आदेश नहीं है और न मुसलमानों ने साधारणत: अपने इतिहास में कभी इसपर अमल किया है।

मुसलमानों का इतिहास पिछले चौदह सौ साल के लम्बे समय पर फैला हुआ है। इस पूरी अवधि में मुसलमान दुनिया के लगभग सारे ही देशों और सारे ही क्षेत्रों में आबाद रहे हैं। वे धर्म-प्रचारकों की हैसियत से भी आए हैं और व्यापारी की हैसियत से भी, वे शासक भी रहे हैं और शासित भी, वे विजेता भी रहे हैं और

विजित भी। मगर इसके बावुजूद इतिहास के इतने लम्बे समय में दुनिया के किसी भी क्षेत्र में मुस्लिम समाज में न तो वे हालात पैदा हो सके हैं जो प्राचीन भारत में मौजूद थे और न उसे उन हालात का सामना करना पड़ा है जो वर्तमान युग में देश की बहुसंख्यक जाति के सामने हैं, जिनका अध्ययन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। इस्लामी समाज न तो बिगड़े हुए यौन-सम्बन्धों के उस संक्रामक रोग से परिचित हुआ है जो वर्तमान यूरोप के लिए अभिशाप बने हुए हैं और न ही उसमें औरत के यौन-शोषण की निशानी मिलती है, जबकि भारत और यूरोप दोनों एकपत्नी-प्रथा पर बल देते हैं और इस्लाम बहुपत्नी प्रथा की इजाज़त देता है।

इतिहास का यह अध्ययन और इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था के इतने लम्बे अनुभवों की कसौटी पर पूरा उतरना भारत और यूरोप के उन इनसानों की आँखें खोल देने के लिए काफ़ी होना चाहिए जिनके दिल में इनसानी हमदर्दी, सहानुभूति, औरत के शोषण से घृणा और अपनी क़ौम के सुधार की भावना ज़िन्दा व जागरूक है। उन लोगों को अपनी क़ौमी सहानुभूति और क़ौमी शुभेच्छा का सुबूत देना चाहिए और बजाय इसके कि मुसलमान औरत को यौन सम्बन्धी शोषण में फँसाने की कोशिश में सहयोग दें, उन्हें चाहिए कि ख़ुद हिन्दू औरतों को, जिनमें से कोई उनकी बीवी है, कोई बेटी, कोई माँ है तो कोई बहन, इस शारीरिक शोषण से बचाने की कोशिश में जुट जाएँ। और चूँकि इतिहास का काफ़ी लम्बा अनुभव है कि औरत को अगर दुनिया में किसी ने यौन-शोषण से बचाया है तो वह इस्लामी क़ानून (मुस्लिम पर्सनल लॉ) ही है, इसलिए अपनी आदरणीय महिलाओं के शील व सतीत्व की रक्षा के लिए ही उन्हें चाहिए कि ख़ुद हिन्दू जाति के लिए मुस्लिम पर्सनल लॉ को लागू करने की माँग करें।

इस्लाम चूँकि कुछ बुनियादी अक़ीदों से शुरू होता है इसलिए उसके प्रस्तावित न्यायपूर्ण और सन्तुलित पर्सनल लॉ के लागू होने से कोई जाति मुसलमान नहीं बन जाएगी, बल्कि जिस तरह क़ानूनी नमूने दूसरे देशों से भी लिए जाते रहे हैं, इस्लाम से भी उसके इस क़ानून को लिया जा सकता है। और अगर वे अपने अन्दर पुनरुत्थानवादियों से मुक़ाबला करने की शक्ति नहीं पाते तो मुसलमानों का सहयोग

भी उन्हें प्राप्त हो सकता है। क्योंकि मुसलमान हिन्दू औरत को भी आदम और हव्वा की बेटी ही समझते हैं और इस रिश्ते से वह भी उनकी बहन है। इसलिए उसकी इस दुर्गत पर वे शर्म से पानी-पानी हो जाते हैं, मगर क्या करें उनकी टीस को समझने और मानने के लिए इस देश में कोई तैयार नहीं। मान लीजिए अगर ऐसे लोग अपने अन्दर इतनी हिम्मत भी नहीं पाते तो फिर यह बात मानवता और सभ्यता से बहुत परे हो जाती है कि मुसलमान औरत को भी उसी शारीरिक और यौन-शोषण की यातना में फँसाने की कोशिश में सहयोग दिया जाए।

(2) मर्द को तलाक़ का हक़

भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ पर दूसरा एतिराज़ यह किया जाता है कि वह मर्द को तलाक़ का हक़ देता है, जबकि औरत के इस हक़ को नहीं मानता। इस एतिराज़ को दोहरानेवालों को मालूम होना चाहिए कि साधारणत: आज के इस उन्नतिशील युग में भी यह बात स्वीकार की जा चुकी है कि दुनिया में जिस व्यक्ति पर जितनी अधिक ज़िम्मेदारियाँ डाली जाती हैं, उसी अनुपात में अधिकार भी दिए जाते हैं। दुनिया में कहीं ऐसा नहीं होता कि अधिक ज़िम्मेदारियों के साथ कम अधिकार किसी व्यक्ति को दिए जाते हों। यही वजह है कि हर शासकीय कर्मचारी अपनी हैसियत में बराबर होता है, मगर किसी व्यक्ति को सेवा से हटाने का अधिकार सिर्फ़ बड़े अधिकारी को दिया जाता है, इसलिए कि ज़िम्मेदारियाँ भी उसी को अधिक सौंपी जाती हैं। किसी मातहत को दुनिया में कहीं यह हक़ नहीं दिया गया है कि वह जब चाहे अपने ऑफ़िसर को हटा दे। अधिकारों के इस बँटवारे में लिंग भेद को भी नहीं देखा जाता और न दुनिया में इसे कोई असमानता या ज़ुल्म कहता है।

इस्लाम भी ख़ानदानी ज़िन्दगी में मर्द और औरत के बीच अधिकारों और कर्तव्यों का बँटवारा करता है। वह प्राकृतिक आवश्यकताओं, सामाजिक ज़रूरतों और कुछ शारीरिक विषमताओं के अनुसार औरत को घर और उसकी चारदीवारी के अन्दर की ज़िम्मेदारियाँ सौंपता है, जबकि मर्द का कार्यक्षेत्र बाहर की दुनिया को

ठहराता है। कार्यक्षेत्र के इसी बँटवारे की वजह से इस्लाम औरत को आर्थिक ज़िम्मेदारियों से पूरी तरह स्वतन्त्र रखता है और रोटी-रोज़ी की पूरी ज़िम्मेदारी मर्द पर डालता है, और मर्द को अपनी इसी विशिष्टता और उत्तरदायित्व के आधार पर ख़ानदान का बड़ा अधिकारी ठहराता है, ताकि ख़ानदान का प्रबन्ध भली-भाँति रखा जा सके। ऐसी स्थिति में सार्वभौम स्वीकृत क़ानून के अनुसार इस्लाम मर्द को अधिकार देता है कि अगर औरत ख़ानदानी प्रबन्ध में उसका सहयोग नहीं देती तो वह ऐसी औरत को तलाक़ देकर अलग कर दे। लेकिन जिस तरह मौजूदा क़ानून उच्चाधिकारी को किसी कर्मचारी को सेवा से पृथक कर देने का केवल अधिकार ही नहीं देता बल्कि इस पृथक करने का तरीक़ा भी निश्चित करता है, इसी तरह इस्लाम भी मर्द को सिर्फ़ तलाक़ देने का अधिकार ही नहीं देता, बल्कि इस तलाक़ की पद्धति भी निश्चित कर देता है जिसके अनुसार तलाक़ की प्रक्रिया तीन तुह्र (मासिक धर्म) पर फैली हुई है। और इस बात की इजाज़त भी देता है कि जैसे ही परिस्थितियों में सुधार नज़र आए तीसरी अर्थात् अन्तिम तलाक़ से बचा जाए। इसका लक्ष्य पति-पत्नी में अलगाव नहीं है, क्योंकि इस कर्म को तो वह शैतान का कार्य कहता है, बल्कि इस तरीक़े का मंशा यह है कि तीन मास की अवधि में अगर संभव हो तो परिस्थितियों को सही दिशा में मोड़ा जा सके। और यदि तलाक़ हो ही जाए तो इससे फिरने को अर्थात् तलाक़ को प्रभावहीन बनाने को कठिन बना देता है। तलाक़ का यह हक़ औरत को मर्द के हाथ में एक मामूली खिलौना न बना दे कि वह सुबह को तलाक़ दे और शाम को लौटा ले, और शाम को तलाक़ दे और सुबह को लौटा ले, क्योंकि इस तरह औरत के शोषण की संभावना पैदा हो जाती है। इसी लिए इस्लाम ने 'हलाला' के कठिन मार्ग का नियम बनाया ताकि एक बार तलाक़ हो जाने के बाद जब तक वह औरत किसी दूसरे मर्द से विवाह न करे और वह उसके साथ पति-पत्नी के सम्बन्ध स्थापित करने के बाद उसे तलाक़ न दे, तलाक़ देनेवाले पहले पति से उसका विवाह नहीं हो सकता। इस तरह इस्लाम ने जहाँ मर्द को तलाक़ का हक़ दिया है, वहीं उसने उस अधिकार के परिणामों को इतना कठिन बना दिया है कि मर्द बार-बार सोचने और सुधार की लगातार

कोशिश के बाद ही बिलकुल आख़िर में अन्तिम हथियार के रूप में इस अधिकार को प्रयोग करे। चूँकि हक़ मर्द को दिया गया है, इसलिए इस हक़ को अत्यन्त सूझबूझ और ज़िम्मेदारी से प्रयोग करने के लिए और औरत को शोषण से बचाने के लिए हलाला की शर्त लगा दी गई है। इसके अलावा इस्लाम ने औरत को भी 'ख़ुलअ्' माँगने का हक़ इस तरह दिया है, जिस तरह वर्तमान शासन कार्यों में मातहत को यह हक़ तो नहीं दिया जाता कि वह अपने ऑफ़िसर को बरतरफ़ कर दे, मगर उसे यह हक़ ज़रूर दिया जाता है कि अगर वह महसूस करे कि उस ऑफ़िसर से उसके सम्बन्ध अच्छे ढंग से नहीं निभ सकेंगे तो वह अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दे। इसी तरह इस्लाम भी अपनी निश्चित की हुई सीमाओं और शर्तों के साथ औरत को अपने अप्रिय पति से ख़ुलअ माँगने का हक़ देता है। जब ऑफ़िसर और मातहत के बीच उनकी हैसियत के अन्तर को पक्षपात नहीं कहा जाता तो फिर ख़ानदानी ज़िन्दगी में पति-पत्नी की ख़ानदानी हैसियत के फ़र्क़ को पक्षपात कैसे कहा जा सकता है। जब वह अन्तर समानता के ख़िलाफ़ नहीं है तो इसे समानता के ख़िलाफ़ कैसे कहा जा सकता ?

इस देश में सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि यहाँ मुस्लिम पर्सनल लॉ पर एतिराज़ करनेवाले सब-के-सब हिन्दू धर्म से सम्बन्ध रखते हैं।[1] ये लोग मुस्लिम पर्सनल लॉ से क़ानून लेते हैं और अपने हिन्दू समाज पर चिपकाकर देखते हैं और शोर मचानेवालों के सुर में सुर मिलाने लगते हैं। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि मर्द को तलाक़ का हक़ देना हिन्दू समाज में विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का कारण बन जाता है, बल्कि कभी-कभी तो उसके लिए अभिशाप सिद्ध होता है। इसलिए कि हिन्दू समाज में विधवा और तलाक़ पाई हुई औरत की बड़ी दुर्गति होती है और उसके लिए जीवन यातना बन जाता है। उसे अत्यन्त तुच्छ और

---

1. इन्हीं लोगों के प्रभाव में कुछ पश्चिम से प्रभावित मुसलमान भी यदा-कदा इसी सुर में सुर मिलाते नज़र आते हैं। उनमें अधिकांश वे होते हैं जो इस्लामी सामाजिक व्यवस्था को जानते ही नहीं।

अपमानित माना जाता है। सास अपनी बहू को और माँ अपनी बेटी को ऐसी औरत के पास बैठने तक नहीं देती, सुहागिन औरतें उनसे दूर रहती हैं—और स्वयं औरतों की हृदय-विदारक बातें उनके लिए समाज में चलना-फिरना मुश्किल बना देती हैं। ऐसे समाज में मर्द को तलाक़ का अधिकार देना वास्तव में औरत पर भयानक अत्याचार सिद्ध होगा।

मगर जहाँ तक मुस्लिम समाज का सम्बन्ध है, न केवल यह कि तलाक़ दी हुई या विधवा औरत को यहाँ ज़लील और घृणित नहीं समझा जाता, बल्कि उसके आदर और गौरव में भी कोई अन्तर नहीं आने पाता। इस्लाम न तो पति की मौत को विधवा की नहूसत ठहराता है और न तलाक़ की पूरी ज़िम्मेदारी औरत पर डालता है। इतना ही नहीं बल्कि वह विधवा को समान रूप में आदरणीय मानता है। उसको दूसरे विवाह की इजाज़त भी देता है। और इजाज़त ही नहीं, बल्कि उसको प्रोत्साहन भी देता है और समाज को आदेश देता है कि वह विधवा औरत को समझा-बुझाकर दूसरी शादी के लिए तैयार करे ताकि पति की मृत्यु से या तलाक़ की वजह से वह मानसिक, शारीरिक और यौन-सम्बन्धी अतृप्ति और आर्थिक कठिनाइयों में न फंस जाए। इसलिए कि ये अतृप्तियाँ उसके व्यक्तित्व को विनष्ट कर देंगी और उनका शोषण व अवनति आरम्भ हो जाएगी।

स्पष्ट है कि जिन लोगों ने केवल हिन्दू समाज में तलाक़ पाई हुई या विधवा औरत की दुर्गति देखी है, उनकी समझ में यह बात कैसे आ सकती है कि पति को तलाक़ का अधिकार देना मुस्लिम समाज में औरत के लिए वह जटिल, अपमानजनक और कष्टदायक समस्याएँ पैदा नहीं करता जो हिन्दू समाज में अवश्य पैदा होती हैं, और इसलिए मुस्लिम पर्सनल लॉ में मर्द के इस हक़ पर एतिराज़ करना नासमझी या हठधर्मी की बात है।

(3) औरत और मर्द का असमान हिस्सा

मुस्लिम पर्सनल लॉ पर तीसरा एतिराज़ यह किया जाता है कि वह मरनेवाले व्यक्ति के छोड़े हुए माल और जायदाद में से औरत और मर्द को समान हिस्सा नहीं

दिलाता, बल्कि औरत को मर्द की अपेक्षा आधा भाग देने का आदेश देता है। यह एतिराज़ भी बार-बार दोहराया जाता रहता है, और आश्चर्य है कि इसे दोहरानेवाला वही गिरोह है जो प्राचीन संस्कृति के पुनरुत्थान का दावेदार है, या कभी-कभी इस सुर में कोई ऐसा मुसलमान भी, विशेष परिस्थितियों में, अपना सुर मिला बैठता है जो इस्लाम के बारे में जानकारी के एतिबार से किसी ग़ैर-मुस्लिम के स्तर से ऊँचा नहीं होता। वह न इस्लाम को जानता है और न उन लोगों को पहचानता है जो यह आपत्ति करते रहते हैं। इस्लाम के विरासत के क़ानून में औरत—पत्नी, माँ, दादी, बेटी, पोती, बहन, बाप शरीक बहन, माँ शरीक बहन, मौसी और फूफी की — विभिन्न हैसियतों से विरासत में से हिस्सा पाती है। इसके अलावा वह महर् की रक़म की और हर उस रक़म की जो उसे बाप, भाई और पति की ओर से दी जाए पूर्णतः स्वयं मालिक होती है । फिर अगर वह इस्लामी सीमा में रहते हुए कोई काम करे तो उसके लाभ की भी वह मालिक होती है। वह यदि इस धन को व्यापार में लगाए तो उसके लाभ की भी वह स्वयं हक़दार होती है। उसकी इस सम्पत्ति में से शौहर तक को व्यय करने का कोई हक़ हासिल नहीं है।

इस्लाम ने औरत के लिए इतने बहुत-से आय के स्रोत प्रदान कर के भी उसके ऊपर व्यय करने की क़ोई ज़िम्मेदारी नहीं डाली। वह घर के व्यय की पूरी ज़िम्मेदारी पति पर डालता है, यहाँ तक कि अगर औरत किसी कारण अपने माता-पिता के घर चली जाए और पति लेने न जाए तो वहाँ के व्यय भी पति को देने पड़ते हैं। तलाक़ की दशा में भी इद्दत के दिनों में औरत के ख़र्चों की ज़िम्मेदारी इस्लाम शौहर पर डालता है और इद्दत समाप्त होते ही औरत को दूसरी शादी की इजाज़त देता है।

जो इस्लाम औरत पर माली ज़िम्मेदारियाँ डाले बग़ैर उसके लिए आर्थिक-सुरक्षा, दृढ़ता, स्वतन्त्रता व सत्ता के इतने रास्ते खोल देता है उसपर एतिराज़ किया जाता है, और एतिराज़ वे लोग करते हैं जो विधवा को पति तक के माल में से हिस्सा नहीं देते।

(4) औरत की आधी गवाही

मुस्लिम पर्सनल लॉ पर चौथा आक्षेप यह है कि उसने औरत को गवाही में मर्द से आधा माना है।

सबसे पहली बात इस सम्बन्ध में यह है कि इस्लाम ने हर अवसर पर औरत की गवाही को आधी गवाही क़रार नहीं दिया है। परिस्थितियों को देखते हुए उसने इसका निर्णय किया है। उदाहरण के लिए अगर एक औरत रमज़ान का चाँद देखने की गवाही दे देती है तो उसको स्वीकार किया जाता है। और मात्र एक औरत की गवाही पर इलाक़े के सभी मुसलमान रोज़ा रखते हैं। इसी तरह ईद के चाँद के लिए दो गवाहों की ज़रूरत होती है। अतः इन दो में एक मर्द और एक औरत गवाह हैं तो औरत की पूरी गवाही मानी जाएगी। इसी तरह क़ुरआन मजीद की सूरा-24 अन-नूर की आयत-8 एक अन्य मामले में बहुत स्पष्ट रूप से एक मर्द और एक औरत की गवाही को समान ठहराती है –

> ''पत्नी से भी सज़ा को यह बात टाल सकती है कि वह चार बार अल्लाह की क़सम खाकर गवाही दे कि वह (पति) बिलकुल झूठा है।''

कुछ हालतों में तो केवल औरत की ही गवाही स्वीकार की जा सकती है मर्द की नहीं। उदाहरण के लिए औरतों के विशेष मामलों में; जैसे कि औरत के शव को ग़ुस्ल देते वक़्त गवाह औरत ही हो सकती है।

यह बात सही है कि इस्लाम ने बहुत से मामलों में औरत की गवाही को आधा माना है। क़ुरआन में है –

> ''ऐ ईमान लानेवालो! जब किसी निश्चित अवधि के लिए आपस में क़र्ज़ का लेन-देन करो तो उसे लिख लिया करो........और अपने पुरुषों में से दो गवाहों को गवाह बना लो, यदि दो पुरुष न हों तो एक पुरुष और दो स्त्रियां जिन्हें तुम गवाह के लिए पसंद करो गवाह हो जाएँ ताकि एक कन्फ़्यूज़ (Confuse) हो जाए तो दूसरी उसे याद दिला दे।''

क़ुरआन मजीद की यह आयत माल के लेन-देन के बारे में गवाही का तरीक़ा

बताती है कि दोनों पक्षों के बीच जब उधार का मामला चल पड़े तो इसपर दो गवाह बना लिए जाएँ और ये दोनों पुरुष हों लेकिन अगर दो पुरुष न मिल सकें तो एक पुरुष और दो औरतें गवाह बनाई जाएँ। वास्तव में आपत्ति करनेवाले यह आपत्ति करते हैं कि दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर ठहराई गई है। और यह औरतों के साथ अन्याय है।

वास्तविकता यह है कि क़ुरआन में ख़ुद इसका कारण उपर्युक्त आयत में बयान कर दिया है। इस्लाम चाहता है कि मामलात इस तरह से चलाए जाएँ जिनसे किसी प्रकार का विवाद उत्पन्न न हो और न किसी के साथ अन्याय हो। औरत आमतौर से अपने स्वभाव और कुछ अन्य प्राकृतिक स्थितियों के कारण कुछ विशेष अवसरों पर मानसिक उलझन का शिकार हो जाती है जिसके क़ारण यह आशंका रहती है कि वह सही तौर पर गवाही न दे सके जिसकी वजह से किसी के साथ न्याय न हो सके और विवाद बजाए ख़त्म होने के बाक़ी रहे। क़ुरआन के इस आदेश में औरत के स्थान को किसी प्रकार से कम करने की बात नहीं कही गई है और न ही इस आयत में औरत के विषय में इस दृष्टि से वार्ता की गई है। बल्कि, जैसा कि हमने बताया है कि कोशिश इस बात की की गई है कि मामला इस तरह किया जाए जिससे आगे चलकर कोई विवाद पैदा न हो। इस सिलसिले में इस बात को भी सामने रखना चाहिए कि इस्लाम ने इस बात का पूरा ख़याल रखा है कि उसके समाज में मर्दों और औरतों का आज़ादाना मेल-जोल न हो सके, इसलिए कि यह मेल-जोल असंख्य सामाजिक और नैतिक समस्याओं और अपराधों के द्वार खोल देता है। इसी कारण उसने इस बात को भी पसन्द नहीं किया कि औरत अपने घर के कामों और बच्चों को छोड़कर न्यायालयों के चक्कर लगाती फिरे और दिन-दिनभर वहाँ बैठकर प्रतीक्षा करती रहे। फिर यह भी ज़रूरी नहीं है कि उसको अपने किसी निकट सम्बन्धी या पति ही के मामले में गवाही देनी पड़े। गवाही की ज़रूरत किसी दूसरे व्यक्ति के मुक़द्दमे में भी आ सकती है। ऐसी दशा में औरत को ग़ैर-मर्दों के साथ भी यात्रा करनी पड़ सकती है। यह और इसी प्रकार की मस्लहतों और उद्देश्यों के कारण इस्लाम ने इस बात को पसन्द नहीं किया कि

औरत अदालतों में गवाहियाँ देती फिरे। चूँकि इस्लाम प्राकृतिक दीन है, इसलिए उसकी नज़र वहाँ तक पहुँच जाती है जहाँ आम तौर पर लोग नहीं पहुँच पाते। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि किसी मुक़द्दमे की प्रकृति इस प्रकार की हो जिसमें गवाह केवल औरत ही हो। इस कारण इस्लाम ने औरत की गवाही को वर्जित तो नहीं ठहराया, मगर यह प्रतिबन्ध अवश्य लगा दिया कि गवाही देने के लिए कोई औरत ग़ैर-मर्दों के साथ कभी भी अकेली न जा सके। इसका मात्र एक स्वाभाविक तरीक़ा यही हो सकता था कि औरत की गवाही को आधी गवाही ठहराया जाए, इसलिए जिस किसी को भी औरत की गवाही के लिए ले जाना पड़े, उसे अनिवार्य रूप से शेष आधी गवाही के लिए किसी दूसरी औरत को भी साथ रखना पड़ जाए; क्योंकि आधी गवाही कोई न्यायालय स्वीकार नहीं करता। और इस प्रकार एक के बजाय दो औरतें एक साथ रह सकें, ताकि उनके शील व सतीत्व पर कभी कोई आँच न आ सके और न वे संदिग्ध हो सकें। फिर इस्लाम चूँकि सच्ची गवाही देने की हिदायत करता है, इसलिए बहुत सम्भव है कि कभी कोई औरत ऐसी सच्ची गवाही दे जाए जो उसके पक्ष के स्वार्थ के विरुद्ध हो और वह क्रोध, चिढ़ और झुंझलाहट में या बदले की भावना से प्रेरित होकर उसपर अत्याचार कर बैठे, इन सब हालात को सामने रखकर इस्लाम ने औरत की गवाही को आधी गवाही ठहराकर उसपर महान उपकार किया है, ताकि वह अकेली रहने के संभावित ख़तरों से भी सुरक्षित रह सके और एक गवाही के लिए दो औरतों का व्यय बरदाश्त करने की वजह से लोग औरत को गवाही के लिए प्राथमिकता भी न दें।

इस सम्बन्ध में जहाँ तक भारत में हिन्दू धर्म को माननेवालों के दृष्टिकोण का सम्बन्ध है उसके लिए मनुस्मृति का श्लोक देखा जा सकता है। इसमें स्पष्ट रूप में कहा गया है कि औरत किसी भी हाल में गवाह नहीं बनाई जा सकती —

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्वय: शुच्योऽपि न स्त्रिय:।
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽअपि ये वृता:॥

''एक भी निर्लोभी पुरुष साक्षी हो सकता है, किन्तु बहुत-सी औरतें पाकबाज़

होने पर भी नहीं हो सकतीं, क्योंकि औरतों की बुद्धि चंचल होती है। और अन्य मनुष्य भी जो दोषों से घिरे हैं, साक्षी (गवाही) के योग्य नहीं होते।" (8:77)

अब अगर इस्लाम ने औरत को गवाह के क़ाबिल तस्लीम किया है और उसको 'आधी साक्षी' की हैसियत दी है तो क्या आज़ाद और सैक्यूलर भारत में उसकी यह विशाल-हृदयता भी अपराध ठहरेगी, और फिर अपराध ठहरानेवाले भी वे लोग हों जिनका दृष्टिकोण यह हो कि औरत किसी भी हाल में गवाही देने के योग्य होती ही नहीं। अस्ल बात यह है कि यह एतिराज़ भी पाश्चात्य लेखकों का उठाया हुआ है जिसे भारत में आयात कर लिया गया है और यहाँ के हिन्दू भाई अपने आईने में झांके बिना इस एतिराज़ का राग अलापते रहते हैं।

(5) लिंगभेद की पॉलिसी

मुस्लिम पर्सनल लॉ पर पाँचवाँ सबसे बड़ा आक्षेप, बल्कि ऐसा आक्षेप जिसके पेट से शेष सभी आक्षेप जन्म लेते हैं, यह है कि वह लिंगभेद की पॉलिसी पर आधारित है। इसलिए इसमें परिवर्तन अनिवार्य है। इस देश में इस एतिराज़ के उठानेवालों का ख़ुद अपना दृष्टिकोण क्या रहा है और आज भी क्या है, इसकी बहस पिछले पृष्ठों में आ चुकी है, जिनसे मालूम होता है कि उनके इतिहास में न केवल औरत के साथ पक्षपात बरता गया, बल्कि उसपर भयानक अत्याचार भी किए गए, उसका लैंगिक शोषण भी किया गया, उसे खिलौने के समान प्रयोग किया गया, उसके व्यक्तित्व को कुचला गया, उसके व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व में लीन कर दिया गया। उसे न केवल अधिकारों से वंचित रखा गया बल्कि उसे शूद्र के निम्नतम स्तर तक गिरा दिया गया, यहाँ तक कि उसे पति की मौत की सज़ा भी, सती होने पर मजबूर करके, दी गई। ऐसे लोग जब इस्लाम के लिंगभेद की पॉलिसी अपनाने की बात करते हैं तो विचित्र और हास्यास्पद मालूम होता है। फिर जब यह आक्षेप उस गिरोह की तरफ़ से उठाया जाता है जो ख़ुद पूरे हिन्दू समाज को प्राचीन हिन्दू-व्यवस्था की ओर ले जाने में लगा हुआ है तो इस आक्षेप का हास्यास्पद होना और भी बढ़ जाता है। यद्यपि पुनरुत्थानवादियों का यह गिरोह बहुत कम संख्या में है जो इस बात को जानता है कि उनका लक्ष्य क्या है?

मगर देश का आम हिन्दू आधुनिक समाज में औरत की उस दुर्गति और शारीरिक शोषण को देखकर भी उसी गिरोह का समर्थन करने लगता है तो बौद्धिक शोषण पर नज़र रखनेवाले लोग आश्चर्य चकित होकर रह जाते हैं। अगर इन लोगों के अनुसार औरत और मर्द की समानता इसी का नाम है तो औरत के लिए अभिशाप आख़िर किस चीज़ को कहा जाएगा? काश! लोगों का अन्त:करण जीवित होता तो उन्हें यह सोचने का अवसर मिलता कि इस देश में हिन्दू औरत का यह शोषण और मुस्लिम औरत के जीवन की यह शान्ति आख़िर किस अन्तर की वजह से है!

जहाँ तक इस एतिराज़ का सम्बन्ध है, यह भी भारतीय मस्तिष्क की पैदावार नहीं है बल्कि यूरोप से आयात किया हुआ है, जिसमें नेक-नीयती और सहानुभूति लेश मात्र भी दिखाई नहीं देती। अगर इसमें नेक-नीयती होती तो पहले वे हिन्दू औरत के जीवन को मुसलमान औरत के जीवन से अधिक शान्ति, आनन्द, सुकून और राहत से भरने की चिन्ता करते और उसको सामने रखकर इस माँग को दोहराते। मगर विचित्र बुद्धिमानी है कि पुनरुत्थान के नाम पर अपनी जाति को तो ढाई हज़ार वर्ष ईसा पूर्व की दुनिया में ले जाने में लगे हैं और मुसलमानों से माँग की जा रही है कि वे अपने समाज में 'संकीर्णता' समाप्त करके उसे 'नवीनता' के साँचे में ढाल लें। शायद इसकी वजह यह है कि यूरोप का आधुनिक समाज भारतीय प्राचीन संस्कृति से ज़्यादा क़रीब होता जा रहा है और इसी लिए यूरोप का यह टेप बराबर बजाया जाता रहता है।

जहाँ तक यूरोप का सम्बन्ध है, वहाँ औरत-मर्द की समानता का यह नारा कलीसा के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में लगाया गया था। चूँकि अतिवाद की प्रतिक्रिया भी हमेशा दूसरी अति पर पहुँचाती है, अत: यह प्रतिक्रिया भी दूसरे छोर तक पहुँची जिसकी वजह से आज यूरोप की औरत का शोषण उसके भूतकाल से अधिक भयानक रूप में हो रहा है।

पुनरुत्थान से पूर्व यूरोपीय समाज में औरत की हालत अत्यन्त दयनीय बन चुकी थी। उस युग में औरत और मर्द ब्रह्मचर्य जीवन बिताने को प्राथमिकता देते थे

और कलीसा की सेवा में जीवन व्यतीत कर देते थे। इनके अलावा 'घरेलू' औरतों को शैतानी जीव, सदा की पापिन और स्वर्ग से बहिष्कृत कराने की ज़िम्मेदार ठहराया जाता था।[1] कलीसा की एक मजलिस ने सन् 582 ई० में धर्मादेश दिया था कि 'औरतें प्राण नहीं रखतीं।'[2] यह ऐतिहासिक सत्यता है कि ईसाइयों में औरतों से सम्बन्ध न रखना आध्यात्मिकता के उत्थान के लिए अनिवार्य समझा जाता था। वैदिक भारत के अनुसार –

> "यूरोप में हर कार्य में औरत की हैसियत अधीनस्थ की रही और निकाह को ख़रीदी हुई दासी बनाने का साधन समझा जाता था। न उसके मालिकाना अधिकार थे, न व्यक्तिगत आज़ादी थी और न ही विरासत में कोई हक़ था। क़दीस बर्नार उसे शैतान की बेटी और यूहन्ना दमिश्क़ी उसे मक्कार कहता था। इन्जील के अनुसार हज़रत ईसा (अलै०) द्वारा अपनी माता को झिड़क देना भी मिलता है। एलेक्ज़ेण्डर छठवें ने 1494 ई० में, लुई दसवें ने 1521 ई० में, एडरीन छठवें ने 1522 ई० में जादू के इल्ज़ाम में हज़ारों औरतों को क़त्ल किया। बल्कि एलिज़ाबेथ और जेम्स प्रथम के काल में भी हज़ारों औरतें जलाई गईं।
>
> लाँग पार्लियामेंट के ज़माने में फाँसियाँ दी गईं। स्काटलैण्ड के जेम्स छठवें ने भी एक अवसर पर इन औरतों का संहार किया। औरतों की सज़ा के लिए इंगलैंड में एक विशेष समिति गठित हुई, जिसने नए-नए अत्याचार के तरीक़े खोज निकाले और डाक्टर स्प्रिंगर के अनुसार 'ईसाइयों ने 90 लाख औरतों को ज़िन्दा जलाया।' ग्यारहवीं शताब्दी तक इंगलैंड में पत्नियाँ बेची जाती थीं। 1567 ई० में स्कॉट पार्लियामेंट ने क़ानून बनाया कि — औरतें किसी चीज़ की मालिक नहीं हो सकतीं।"[3]

ये थे यूरोप के वे हालात जिनमें पुनरुत्थान से पहले वहाँ की औरत घिरी हुई थी। जब यूरोप में स्वतन्त्र विचारों की शुरुआत हुई और ज्ञान-विज्ञान और साइंस

---

1. देखें, मुस्लिम पर्सनल लॉ और इस्लाम का आइली निज़ाम (उर्दू)।
2. देखें, मुस्लिम पर्सनल लॉ और इस्लाम का आइली निज़ाम (उर्दू)।
3. मुस्लिम पर्सनल लॉ और इस्लाम का आइली निज़ाम (उर्दू), पृ०-215-216 ।

व टेक्नॉलोजी ने उन्नति की तो इन स्वतन्त्र विचारकों और बुद्धिजीवियों (Rationalists) को वहाँ की औरत का भी ख़याल आया और उन्होंने औरत को समान अधिकार देने के लिए मर्द और औरत की समानता का नारा लगा दिया और इस नारे को बौद्धिक बुनियाद प्रदान करने के लिए विभिन्न दर्शनशास्त्रों का आविष्कार किया। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि मानव अधिकारों के बारे में औरत और मर्द में कोई भेद-भाव नहीं। औरत और मर्द दोनों बहरहाल इनसान हैं इसलिए इनसानी हुक़ूक़ के बारे में उन्हें समान होना चाहिए।

मगर यह औरत का दुर्भाग्य था कि यही युग यूरोप में साइंस और टेक्नॉलोजी के आरम्भ का युग था। इनकी वजह से यूरोप में औद्योगिक क्रांति आ गई जिसके नतीजे में बड़ी-बड़ी फ़ैक्ट्रियों का निर्माण होने लगा और उनमें काम करने के लिए मज़दूरों की आवश्यकता पड़ी। इससे यूरोप में मज़दूरों की उपलब्धता और आम आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न हो गं। मर्द और औरत की समानता का नारा अभी नया-नया ही था। अत: उसमें तत्काल 'काम की समानता' का अर्थ उत्पन्न कर दिया गया और अब औरत व मर्द की समानता का अर्थ मर्द व औरत में काम की समानता बन गया। दावा कर दिया गया कि मर्द-औरत हर प्रकार समान हैं, इसलिए समान मज़दूरी पर समान कार्य भी कर सकते हैं। और इस तरह औरत को जीवन के हर मैदान में मर्द के साथ दौड़ा दिया गया। वह ख़ुद भी एक लम्बे समय से शोषण का शिकार थी इसलिए उसने इस समानता को वरदान समझा और इसको स्वीकार कर लिया। अत: तब से आज तक पश्चिम की औरत भयानक शारीरिक शोषण की सज़ा भुगत रही है।

यह थी वह पृष्ठभूमि जिसमें यूरोप ने औरत-मर्द की समानता का नारा लगाया था, मगर फिर वह दूसरे छोर तक पहुँच गया और पश्चिम की औरत अब पहले से भी ज़्यादा शारीरिक शोषण का शिकार होकर रह गई है। भारत चूँकि एक लम्बे समय तक अंग्रेज़ों की ग़ुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ा रहा है, और इस बीच अंग्रेज़ों ने भारतीय नौजवानों के मस्तिष्क पाश्चात्य दर्शन के साँचे में ढाल दिए थे, इसलिए इस देश में यह नारा उन्नतिशील होने का पर्यायवाची हो गया। एक ओर आधुनिक

शिक्षित व्यक्ति पश्चिम की मानसिक ग़ुलामी में फँसे थे इसलिए इस नारे को हक़ीक़त पर आधारित समझ रहे थे, तो दूसरी ओर इस देश के प्राचीन हिन्दू सांस्कृतिक पुनरुत्थान की इच्छा रखनेवालों के लिए यह नारा आकस्मिक वरदान सिद्ध हुआ और उन्होंने एक तीर से दो शिकार करना आरम्भ कर दिया। एक ओर उन्होंने पश्चिम के इन दर्शनों की अपेक्षा प्राचीन हिन्दू दर्शनों को श्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश शुरू कर दी और इस मामले में हिन्दू जाति में महान होने का भाव पैदा करने में जुट गए, तो दूसरी तरफ़ इसी नारे से आधुनिक शिक्षा प्राप्त मुसलमानों में हीनभाव पैदा करने की कोशिश शुरू कर दी, ताकि उन्नतिशील कहलाने के लिए वे अपने हर प्राचीन मूल्य को तोड़कर फेंक दें। अत: इस नारे के शोर में उन्होंने देश में प्राचीन सांस्कृतिक पुनरुत्थान की कोशिश शुरू कर दी जिसका विशलेषण पिछले पृष्ठों में हो चुका है। इस तरह वे एतिराज़ात जो यूरोपीय विचारकों ने ख़ुद अपने प्राचीन समाज पर किए थे, यूरोपीय विद्वानों ने उनको मुस्लिम पर्सनल लॉ के विरुद्ध लगाना शुरू कर दिया और भारत के ये पुनरुत्थानवादी आज़ादी और सेक्यूलरिज़्म की छाया में उन्हीं टेपों को यूरोप से आयात करके इस देश में बजाते रहते हैं।

जहाँ तक इस्लाम का सम्बन्ध है वह औरत और मर्द की पूर्ण मानवीय समानता को न सिर्फ़ मानता है, बल्कि दुनिया में इसका सबसे पहला उद्घोषक भी वही है और उसने औरत को यह समानता दी भी है। लेकिन इस्लाम यूरोप के अर्थों में दोनों के बीच कार्य की समानता के सिद्धान्त को भयानक अत्याचार ठहराता है। इसलिए वह कामों की समानता का नहीं, बल्कि जीवन की सुविधाओं में समानता का पक्षधर है। वह समानता के दंभ में गाय को आराम के साथ चारा खिलाने के बजाय, बैल के साथ हल में जोत देने को किसी भी क़ीमत पर समानता नहीं कहता। इसको न यूरोप समानता कहता है, न भारत का किसान इसपर अमल करता है। मगर ख़ुदा जाने इनकी अक़्लों को क्या हो जाता है कि जब औरत और मर्द का मामला आता है तो वे गाय और बैल के इस अन्तर को भूल जाते हैं और दोनों को हल में जोत डालते हैं। इस्लाम की दृष्टि में समानता यह है कि हर व्यक्ति

से उतना और उस प्रकार का काम लिया जाए जिसमें उसकी शारीरिक बनावट, स्वाभाविक योग्यताएँ, लैंगिक अन्तर, प्राकृतिक आवश्यकताओं और शारीरिक विशेषताओं व विषमताओं को ध्यान में रखा गया हो। फिर वह इस बात को भी ज़रूरी ठहराता है कि काम का निर्धारण इस प्रकार किया जाए कि उससे निवृत होकर कोई व्यक्ति उकताहट और असाधारण थकान का अनुभव न करे। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर उसने मर्द और औरत दोनों के बीच कार्य का विभाजन किया है। इसलिए उसे किसी भी प्रकार का लिंगभेद या पक्षपात नहीं कहा जा सकता। इसके अ़लावा कौन नहीं जानता कि भारत का प्रत्येक नागरिक चाहे वह कोई भी हो और उसका सम्बन्ध समाज के किसी भी वर्ग से हो, समान अधिकार रखता है। लेकिन इसी मुल्क में समानता के उस मापदंड के बावजूद सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक आधार पर पिछड़े हुए वर्गों को विशेष सुरक्षाएँ भी दी जाती हैं। क्या देश के समान नागरिकों में यह पक्षपात-नीति नहीं है? मगर इतने बड़े देश में कोई भी इसे पक्षपात नहीं ठहराता। इसी तरह अगर इस्लाम ने मानव प्रकृति को और मानव-इतिहास के इस अनुभव को दृष्टि में रखकर कि औरत का शोषण सदा मर्दों के हाथों होता रहा है, उसे शोषण से बचाने के लिए कुछ सुरक्षाएँ प्रदान की हैं तो उन्हें लैंगिक पक्षपात की पॉलिसी कैसे ठहराया जा सकता है।

मुस्लिम पर्सनल लॉ पर किए जानेवाले आक्षेपों की व्याख्या से मालूम होता है कि ये सब-के-सब निरर्थक और व्यर्थ हैं जिन्हें यूरोप से आयात करके मुस्लिम पर्सनल लॉ पर लगाया जा रहा है और इसी लिए उनके बारे में दिए गए उचित से उचित जवाब को सुना तक नहीं जाता। इस पूरी बहस से यह भी मालूम हो गया है कि आख़िर इस देश में मुस्लिम पर्सनल लॉ ही को क्यों निशाना बनाया जा रहा है? इसके पीछे पुनरुत्थानवादियों का क्या लक्ष्य छिपा हुआ है? पुनरुत्थानवादियों की मंज़िल क्या है, और यह शोर आख़िर क्यों मचाया जाता रहता है ? इन हालात में ज़रूरी हो जाता है कि मुसलमान अपने ख़ैरे-उम्मत (सर्वोत्तम समुदाय) होने के मक़ाम को पहचानें और अपनी औरतों को किसी भी प्रकार के शोषण से बचाने का

दृढ़-संकल्प कर लें। मुसलमान इस बात को हमेशा याद रखें कि क़ुरआन ने उन्हें उत्तम समुदाय की उपाधि देने के बाद उनकी ज़िन्दगी का मक़सद यह बताया है कि उन्हें 'तमाम इनसानों के कल्याण और भलाई' के लिए पैदा किया गया है। इस लिए मुसलमानों का कर्त्तव्य है कि वे यहाँ के ग़ैर-मुस्लिम, विशेषतः हिन्दू क़ौम के अन्तःकरण को जगाकर उन्हें उनके अपने समाज के तेज़ी से बिगड़ते हुए हालात की ओर ध्यान दिलाकर, इस बात पर तैयार करें कि वे अपनी महिलाओं को शोषण से निकालने के लिए कमर कस लें। इस वक़्त जो सैलाब बहुत कम प्रयासों से रोका जा सकता है, बाँध टूट जाने के बाद बड़े-बड़े और घोर प्रयासों से भी उसे रोक पाना असम्भव हो जाएगा।